होशंगाबाद विज्ञान

अंक 28 शिक्षा व शिक्षकों से संबंधित पत्रिका जून 89

सबसे खतरनाक होता है
बेज्ञान शान्ति से भर जाना
न होना तड़प का,
सब सहन कर लेना,
घर से निकलना काम पर,
और काम से घर लौट आना,

सब से खतरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना ....

• पाश

होशंगाबाद विज्ञान

होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने तक ही सीमित नहीं है,
बल्कि शिक्षा में नये सोच और नवाचार का प्रतीक है ।

संपादनः
राग
हृदयकान्त

सहयोगः
ब्रजेश सिंह
राजेश सिन्दरी
निधि मेहरोत्रा
हेमा रामाकृष्णन
अनु गुप्ता
तुषार ताम्हने
इला मिश्रा

चित्रांकनः
राजेश यादव
कैरन

डायरी से एक दिन

शैक्षिक गतिविधि-

"खुशी-खुशी" प्राथमिक शिक्षण कार्यक्रम की गतिविधियों से भरपूर पाठ्यपुस्तक है। इसके पूर्व भी हमने शैक्षिक गतिविधियों से संबंधित अनुभव प्रकाशित किए हैं। इस बार शाहपुर की शिक्षक साथी गंगा गुप्ता की डायरी से उनका अनुभव प्रस्तुत है।

उपस्थिति-

कक्षा पहली-5 दिनांक-29-10-88

कक्षा दूसरी-4 दिन- शनिवार

कहानी- शोर मचा जंगल में

पुस्तक परिचय:

यह एक चित्रों से भरी-पूरी पुस्तक है जिसमें एक-दो वाक्य बीच-बीच में हैं। "शोर मचा जंगल में" का हरेक पात्र बहुत खेलता-कूदता है, मस्त रहता है और खूब शोर भी मचाता है। इस कहानी का पूरा परिवेश जंगल का है। सभी जानवर अपने-अपने साथियों के साथ खेल-कूद रहे होते हैं और इतने में ही कहीं से दहाड़ने की आवाज़ सुनाई आती है। सब अनुमान लगाते हैं कि ये आवाज़ किसकी हो सकती है? जब उन्हें अहसास होता है कि अरे! ये तो शेर की दहाड़ने की आवाज़ है, तो सभी भागते हैं।

कक्षा की गतिविधि:

सबसे पहले तो "शोर मचा जंगल में" के चित्रों पर चर्चा हुई, फिर जंगल के बारे में चर्चा। प्रत्येक पन्ने पर जो जानवर आते गये उनके नाम बोर्ड पर लिखते गई। जानवर क्या कर रहे हैं? कितने हैं? पन्ने का रंग कौनसा है? कितने हाथी छोटे, कितने बड़े हैं? आदि। बच्चे पन्ने के अनुसार भरे प्रश्न का जवाब दे रहे थे।

दूसरे पन्ने की शुरूआत से पहले, बोर्ड पर लिखे नामों को, बच्चों से दोहराया और पूछा--

- पहले किसने खेल-कूद कर शोर मचाया था ? बोर्ड पर बने नामों पर अंगुली रखकर बताओ।

- एक बच्चा-बेहनजी, हाथी ने
- दूसरा बच्चा-बेहनजी, हिरण ने
- अच्छा बच्चों, हिरण कहां लिखा है?

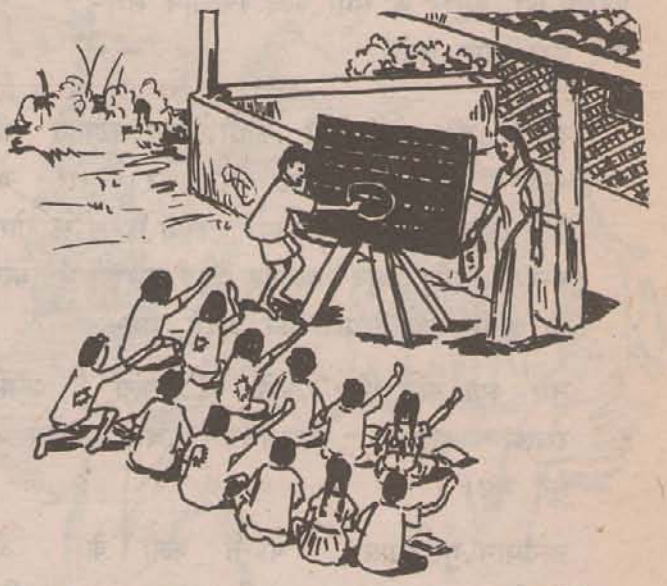

बच्चे, जहां हिरण लिखा था, वहां हाथ रख देते। बार-बार दोहराने से बच्चे पहचान गए कि हाथी, हिरण, खरगोश, बन्दर, शेर, आदि जानवरों के नाम कहां लिखे हैं। कहानी के प्रत्येक नाम को पहली कक्षा के चन्द्रभान, कौशल्या, ममता, मुकेश और गुरूदयाल ने भी बताया। कहानी प्रत्येक पन्ने पर चित्र की वस्तुस्थिति के अनुसार अलग-अलग बनी।

आज बच्चों को सबसे ज्यादा मजा आया,बच्चों की आज पूरी भागीदारी थी। बच्चों को तख्ते पर लिखे शब्दों की ओर आकृष्ट करने के लिए मैंने कहा--

भैया देखते जाओ अपन नाम लिखते जा रहे हैं कि कौर शोर मचा रहा था। बाद में इनकी पकड़कर पिटाई करेंगे,जे शोर मचाते हैं?

बच्चे खुश हुए कि बाद में इनकी भी पिटाई होगी ।

चन्द्रभान बोला-बेहनजी खरगोश भी लिखो,जे भी हल्ला कर-रा था।

इसी प्रकार हल्ले के बीच ही शेर जोर से दहाड़ा और सभी जानवर भागे और उनके भागने से तो अपनी कहानी ही खतम हो गई।

पहली और दूसरी के सभी बच्चे चिल्लाने लगे-
मैंने कहा-अच्छा चलो।

दो-दो की टोली में हाथी,हिरण,खरगोश और बन्दर बनाएं।एक बच्चा बना,शेर। शेर जोर से दहाड़ा। सभी जानवर हाथी,हिरण,खरगोश, बन्दर भागे। खूब भगदड़ हुई,कमरे में बच्चों को काफी मजा आया। फिर सबसे पूछा-

तुम क्या बने थे? तख्ते पर लिखा है ऊंगली रखकर बताओ। जिस-जिसने बता दिया वे छूट गए।

चन्द्रभान,गुरूदयाल पहली कक्षा के और दूसरी कक्षा का कमल नहीं बता पाये,इन तीनों की जमानत जब्त हो गई। मैंने कहा उनकी पिटाई होगी,जेई शोर मचा रहे थे। जंगल में उन्हें गोल-गोल घुमाया,ऊठक-बैठक लगवाई।

सभी बच्चे बहुत खुश हुए। खूब मजा आया। बच्चों ने तख्ते पर लिखे शब्द काफी हद तक ध्यान में रखे।

टिप्पणी

मैंने अनुभव किया कि दो दिन पहले ये बच्चे शब्द कार्ड के शब्द गाय,चना,चाबी,चाकू,छाता कई बार पट्टी पर लिखाने के बाद भी नहीं बता पा रहे थे। वे ही बच्चे कहानी में आए शब्दों को बोर्ड पर लिखने,कहानी से उन शब्दों का संबंध जोड़ने और कहानी के आगे बढ़ने पर दोहराते जाने से आसानी से बता रहे थे,पहचान रहे थे। बहुत देर बाद भी बीच में से पूछने पर बंदर कहां लिखा है ममता जो पहली पढ़ती है,उसने भी झट ऊंगली रखकर बता दिया बेहनजी ये बंदर लिखा है। दूसरी कक्षा के बच्चों ने फिर बोर्ड पर लिखे शब्दों की नकल की। फिर···हो गई छुट्टी।

गंगा गुप्ता
प्राथमिक शाला
पाठई (बैतूल)

पाठकों के विचार

लेख : मैं मुसलमान हूं

पिछले दिनों होशंगाबाद विज्ञान में लेख पढ़ा।
मैं मुसलमान हूं। काफी कुछ सोचने-समझने को मिला। मासिक गोष्ठी में भी विचार के लिए यह विषय रखा। विषय का ध्येय था कि धर्म से उपजी समस्याओं को दूर करने के हम कुछ उपाय सोच सकते हैं क्या? कई महत्वपूर्ण विचार सामने थे पर मैं जिस ढंग से सोच रहा था वो कुछ इस तरह हैं

धर्म क्या है? इसका क्या महत्व है? इसे संसार में क्यों माना जाता है? क्या बालक का किसी भी घर में पैदा होना ही उसका मुसलमान,हिन्दू या ईसाई बन जाना होता है? क्या पैदा होते ही वह बालक हिन्दू या मुसलमानों सा आचरण करने लगता है?"यदि नहीं तो फिर बालक किस धर्म या संप्रदाय का होता है?"केवल बालक पर विचार करें तो पाएंगे कि बालक मात्र बालक होता है-न वह हिन्दू होता है न मुसलमान।विचारकों का भी यही मत होना चाहिए कि"बालक-एक मानव जीव" है। हिन्दू विचारक उसे"परमात्मा का स्वरूप" कहते हैं। पर प्रश्न उठता है-परमात्मा क्या है? कुछ मत हैं कि-परम आत्मा को परमात्मा कहते हैं। फिर बात पैदा होती है कि आत्मा क्या है? तो यह कह कर बात टाल दी जाती है कि आत्मा शरीर के अंदर होती है वह दिखती नहीं है। ऐसी बहुत सी बातों की छीछालेदर करते देखा-सुना गया है। पर वास्तव में यह पूरी तरह मानना होगा कि बालक किसी भी धर्म या मजहब का नहीं होता।

धर्म क्या है? यदि इसी पर विचार करें तो पाएंगे कि पहले ही कई विचारक काफी पोथे लिख चुके हैं-"जिसे धारण किया जावे वह धर्म है"। सनातनियों ने तो हर बात को धर्म का पुछल्ला लगाकर कहने की ठान सी ली है- पत्नी तक को धर्म पत्नी का दर्जा दे डाला-बहुत से नाम के आगे पीछे धर्म जरूर लगा दिया- धर्म भाई,धर्म गुरू,धर्म बहन,धर्म-कर्म आदि आदि। इन सबके बावजूद भी धर्म के बारे में पूरी जानकारी जन साधारण तक नहीं पहुंचा सके। उसका कारण एक ही था कि धर्म एक नहीं था अर्थात विचार एक नहीं थे। हर समुदाय ने अपने-अपने विचार रखे। अपने-अपने खेमे गाड़ दिए संसार में और उन्हीं विचारों को धार्मिक विचारों का नाम दे दिया-जिन्हें आज हम हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म या ईसाई धर्म के नाम से भुगत रहे हैं।

कुछ का मत है कि आदिमानव मिल-जुल कर नहीं रहता था-स्वार्थी झगड़ालू था। जो भी हो पर यह बताया जाता है कि शांति के लिए धर्म की स्थापना हुई सत्ता को धर्म सत्ता घोषित किया गया-सत्ताधारी को शक्तिशाली बनाया गया-सारी शक्तियां उसी में निहित कर दीं-और उसके हर

वाक्य को धर्म वाक्य मान कार्य प्रारंभ किया गया। धर्म की स्थापना शांति हेतु की गई-यह विचार हमें मानने में कोई एतराज नहीं-शांति चाहने वाले समाज को भी धार्मिक समाज का नाम दे डाला फिर चाहे वह हिन्दू समाज हो या मुसलमान। पर क्या आज मात्र धर्म की वजह से ही सारे संसार में अशांति देखने को नहीं मिल रही है-तो क्या आज भी हम शांति की स्थापना के लिए,धर्म का होना,मान लें। आज तो ठीक उल्टा ही प्रतीत हो रहा है। आज तो अशांति धर्म के कारण ही है। धर्म की वजह से ही लड़ाई-झगड़े,लूट-खसोट देखने को मिल रही है। धर्म के कारण ही जहां-जहां दंगे होते दिखाई देते हैं- तो क्या इसे हम धार्मिक दंगों का नाम देकर श्रद्धा से देखने और सुनने लगें? जिस तरह से हमें धार्मिक चर्चा सुनाई जाती हैं।

हमने अपनी बात बालक से शुरू की थी तो बालक पर ही विचार करें क्योंकि बालक मात्र मानव जीव होता है। न वह हिन्दू है न मुसलमान। यदि किसी के घर या परिवार में पैदा होने से ही उसमें वे सारे आचरण आ जाते-जो हिन्दू-मुसलमानों को अलग-अलग करते हैं तो विद्वान के घर विद्वान ही पैदा होता उसे अध्ययन की जरूरत ही नहीं पड़ती और मूर्ख के घर मूर्ख ही पैदा होता चाहे वह.....। अरे-हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई तो बहुत दूर की बातें हैं हमने तो मानव के घर बंदर पैदा होते सुना है यह बात अलग है कि मानव के पूर्वज बंदर ही थे।

उक्त बातों के झमेले में न पड़कर आज हमें विचार इस बात पर करना है कि इस धार्मिक अशांति से कैसे निपटा जावे? धार्मिक इसलिए कि यह धर्म से पैदा हुई है। धार्मिक दंगों को कैसे रोका जावे।

तो आयें पुनः उस बालक पर जो अधार्मिक है,किसी भी मजहब के गुणधर्म उसमें नहीं हैं। उसे कोई मतलब नहीं है हिन्दुओं के सूरज और मुसलमानों के चांद से वह दोनों को देखकर हंसता है आखें बंद करता है। बेचारे चांद-सूरज ने भी नहीं सोचा होगा कि हमारे भी बंटवारे कर लेंगे ये धार्मिक लोग। बादल बेखटके सभी को पानी बराबर नहीं देता। और अपनी गर्जना से सारे माहौल को न गरजाता। उसे क्या मालूम कि मस्जिद के सामने ढोल नहीं बजते। हम ऐसे ही अधार्मिक बालक को अपना मार्गदर्शक मान उसी के सोच से अपना सोच बनाएं-

बालक जन्म से अपनी मां को जानता है और

उसे वह अपनेपन में जकड़ लेता है उस समय केवल मां ही उसकी होती है। आप ने देखा होगा-वही बालक अपने सगे भाई-बहनों को भी अपनी मां की गोद में सिर रखकर नहीं सोने देता अर्थात उसके अपनेपन का दायरा सीमित है केवल मां ही उस क्षेत्र में आती है लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता है और उसे समझ में आता है कि यह मेरा भाई है, बहन है, पिताजी हैं, दादा, दादी आदि याने पूरा परिवार जब उसका हो जाता है तब सबकी चीजें उसकी और उसकी चीजें सबकी हो जाती हैं यह अपनत्व का विकास है। यही नहीं कुछ समय बाद उसका मोहल्ला, उसका नगर, उसका देश तक भी हो जाता है लेकिन इस विकास-वादी विचार को यहीं घुन लगा दी जाती है। यदि इस विचार को और आगे बढ़ाया जाए तो कितना अच्छा होगा-आज विज्ञान चन्द्रमा के बाद मंगल पर जाने की बात कर रहा है-शताब्दियों बाद क्या हम वहां जाकर यह नहीं कह सकेंगे कि वो हमारी पृथ्वी दिख रही है या हम पृथ्वी से आए हैं।

लेकिन क्या करें-बालकों के अपनेपन के विकास को एक दायरे से आगे बढ़ने ही नहीं देते ये धार्मिक कहे जाने वाले लोग-उसे बचपन से ही हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म आदि की घुट्टी पिलाई जाने लगती है। हिन्दू मुस्लिम का जामा पहनाकर एक निश्चित खेमे में खड़ा कर दिया जाता है।

आज आवश्यकता है हमें उस बालक से शिक्षा लेने की जो समस्त घेरे-बंदियों से हटकर-अपनेपन के विकास में लगा है। आज हटाना है उन धर्म के ठेकेदारों के विचार जो हमारे ऊपर बचपन से लादे गए हैं-झटककर रख देना है उन सारे धर्मों को जो अशांति पैदा करते हैं। शांति और संतोष का एक ही रास्ता है अपनेपन का विकास।

मैं जानता हूं धर्म शब्द से पीछा छुड़ाना इतना आसान नहीं। मुझे कोई ऐतराज नहीं-लगा लीजिए पुछल्ला और एक नए समाज की रचना कीजिए-यह समाज धर्म-मानव धर्म होगा। लेकिन इसके लिए अपने विचारों वाले व्यक्तियों का संगठन जरूरी है और फिर शांति की प्राप्ति के लिए क्रांति का सहारा लेना होगा-तब कहीं-मानव समाज या मानव धर्म की स्थापना होगी।

सुनील जोशी, टिमरनी

प्रायोगिक परीक्षा और हमारी इच्छा :

ऐसा लगने लगा है कि हम पर इच्छा की प्रबलता बढ़ती जा रही है। मतलब इच्छा पूर्णतः स्वस्थ है, तब हम असंभव को संभव बनाने में नहीं चूकते, किन्तु इसके विपरीत कुछ कार्य ऐसे भी हमें करना पड़ते हैं जिनको करने के लिए हमारी इच्छा सुस्ती के बोझ में दबने लगती है। इन्हीं कामों में से एक काम है होशंगाबाद विज्ञान की प्रायोगिक परीक्षाएं संपन्न कराना।

आज आर्थिक पहलू इतने महत्वपूर्ण बन चुके हैं कि हम अपने शासकीय कर्त्तव्य को भूलकर प्रायोगिक परीक्षा के लिए दिए जाने वाले पारिश्रमिक की राशि से स्वयं को तौलने लगते हैं। हालांकि यह गलत नहीं है कि किसी एक छात्र की प्रायोगिक परीक्षा संपन्न कराने के लिए "पारिश्रमिक देयक" के नाम पर हमें मात्र 25 नए पैसे दिए जाते हैं, इस 25 पैसे के हकदार भी 3 होते हैं। मुख्य परीक्षक/ सहायक परीक्षक और उत्तर पुस्तिका का मूल्यांकन कर्त्ता। याने प्रति व्यक्ति मात्र 08 नए पैसे। यह सारे विभाग की हस्यास्पद व्यवस्था है।

जब भी प्रायोगिक परीक्षा कार्यक्रम बनाने की भनक कानों में पड़ती है तो खासकर विज्ञान शिक्षक एवं अनुवर्तनकर्त्ताओं का ध्यान संगम केन्द्र प्रभारी शिक्षकों की ओर बरबस खिंच जाता है और...." साहब, इस बार यार ध्यान रखना किसी रोड साइड के स्कूल में ही भेज देना परीक्षा लेने। पिछले साल तो बहुत साईकिल चलवाई तुमने।"

कुछ इस लहजे में कहते हैं कि अरे इस बार तो आप हमें रहने ही देना कुछ मिलता-जुलता है नहीं आपकी प्रायोगिक परीक्षा में। और वे कुछ न कुछ कारण सोचकर बता देते हैं कि फलाँ जरूरी काम है।

यदि रोड साइड या मर्जी के माफिक स्कूल मिल गया तो धन्यवाद मिल गया, वर्ना अच्छा फंसाया आपने भूखे मर गए या पानी नहीं मिला...।

इस सबके बावजूद भी कुछ विज्ञान शिक्षकों ने पूर्ण उत्साह के साथ परीक्षा संपन्न कराई। प्रायोगिक परीक्षा से संबंधित समस्त प्रपत्र आदि पूर्ण भरकर प्रस्तुत किए हैं। किन्तु अनेक ऐसे भी विज्ञान शिक्षक अनुभवी होने के बाद भी असतर्कता बरत कर गलतियां कर बैठे हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। बल्कि अगले सत्र में उन त्रुटियों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना आवश्यक हो गया है।

उदाहरण के लिए परीक्षा के उपरान्त मुख्य परीक्षक को संगम केन्द्र पर उत्तर पुस्तिका का सील्ड लिफाफा, प्रश्न पत्र लिफाफा, पारिश्रमिक देयक पूर्ण भरे हुए एवं परीक्षा व्यवस्था एवं प्रश्न पत्र पर गोपनीय प्रतिवेदन जमा करना था किन्तु--

कुछ शालाओं के पारिश्रमिक देयकों में छात्र संख्या प्रमाणित कर प्रधान पाठक के हस्ताक्षर एवं पद मुद्रा नहीं थी।

कुछ मुख्य/सहायक परीक्षकों ने पारिश्रमिक देयकों पर न तो अपने नाम, पद, पता लिखा, न ही हस्ताक्षर किए।

कुछ मुख्य परीक्षकों ने किस शाला में परीक्षा संपन्न कराई यह पारिश्रमिक देयक में नहीं लिखा।

कुछ मा·शा· के प्रधान पाठकों ने लिफाफा सील बंद नहीं कराकर केवल लिफाफे में भरकर भेज दिया। एक मा·शा· के प्रधान पाठक ने तो स्वयं के हस्ताक्षर किए बिना ही लिफाफा भिजवा दिया।

स्पष्ट निर्देशों के बावजूद भी पारिश्रमिक की राशि तीनों में बराबर-बराबर नहीं बांटकर लिखी गई या कोरा ही देयक प्रस्तुत कर दिया।

कुछ मा·शा· के पारिश्रमिक देयक मुख्य परीक्षकों ने संगम केन्द्र पर जमा ही नहीं किए।

यदि चिन्तन किया जावे तो एक परीक्षक अथवा प्रधान पाठक को संभागीय पूर्व माध्य· परीक्षा के गोपनीय एवं महत्वपूर्ण कार्य के प्रति इतनी असावधानी रखना केवल कार्य के प्रति उदासीन होना ही है।

यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है कि क्या आज भी अनुभवी एवं शिक्षित विज्ञान शिक्षकों एवं प्रधान पाठकों के द्वारा प्रस्तुत किए दस्तावेजों की पूर्णता पर शक कर उन्हें बारीकी से जांच कर पावती देने की आवश्यकता है?

यदि हां तो हमें इस उदासीनता एवं असावधानी के प्रति ठोस कदम उठाने की जरूरत है, वर्ना हर आसान लगने वाला कार्य मुश्किल बन सकता है।

प्रायोगिक परीक्षा के दौरान हमने यह भी देखा है कि कुछ परीक्षक विविधत छात्र का सूक्ष्मता से अवलोकन कर उसे तारांकित प्रश्न पर 5 में से अंक प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर ऐसा सुनने को मिलता है कि "कहां का तारांकित प्रश्न हमने तो अंदाज से ही वहां के विज्ञान शिक्षक से पूछकर अंक दे आए। कहां एक-एक छात्र से प्रश्न पूछते और कागज पर नोट करते।

यहां तक तो ठीक है एक माध्यमिक शाला के छात्र ने उत्तर पुस्तिका में अपनी शाला का नाम, स्वयं का नाम, रोल नंबर, पिता का नाम कुछ भी नहीं लिखा और परीक्षा देकर कापी जमा करके चला गया। तारांकित प्रश्न पर मुख्य एवं सहायक परीक्षक द्वारा उसे अंक देकर हस्ताक्षर भी किए गए हैं। किन्तु जब संगम केन्द्र पर मूल्यांकन कर्त्ता ने मूल्यांकन के पश्चात अंक सूची बनाई तो पाया कि एक कापी बिना नाम की है। उस संस्था के शिक्षकों को मौखिक सूचित किया गया कि वे छात्रों की सूची बनाकर भेज दें किन्तु नहीं भेजी गई। परिणामतः उस छात्र की कापी बिना नाम के मूल्यांकन कर भेजनी पड़ी (अंक सूची में नोट लगाया है कि छात्र का नाम नामिनल रोल से टेबुलेशन के समय पता किया जावे)।

आखिर इस तरह की त्रुटियाँ हमें क्या सिखाती हैं? यही न कि हम अपने कर्त्तव्यों एवं सावधानियों के प्रति जिम्मेदारी नहीं निभा रहे हैं।

मूल्यांकन हेतु कुछ शिक्षकों को पत्र भेजे गए। कुछ आए कुछ नहीं आए। न आने वालों का कारण एक तो यही कि केवल पेन घिसना ही है, मिलना-जुलना तो कुछ है नहीं, दूसरा कारण कोई भी शासकीय/अशासकीय काम बताकर मुक्ति पा लेना होता है।

यह बहुत सामान्य सी बात है कि कुछ प्रयोगों के बारे में मुख्य परीक्षक को अपने आंकडे या जानकारी प्रतिवेदन में लिखना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं किया गया। परिणामतः कुछ मा·शा· के परीक्षकों ने क, ख, ग द्रव क्या दिए थे इनमें अम्ल, क्षार और लवण कौन थे, नहीं लिखा था आयतन निकालने के लिए कितने कंचे या कौनसी वस्तु दी गई। समूहीकरण के लिए या अन्तर करने के लिए कौन से बीज या पत्तियां, पौधे दिए गए। यदि नामों की जानकारी प्रतिवेदन में नहीं दी है, तब मूल्यांकन के समय

बड़ी मुश्किल होती है। कभी-कभी कौन सा प्रयोग असफल रहा इसकी जानकारी भी नहीं दी जाती है। आखिर गोपनीय प्रतिवेदन लेने का क्या मक्सद है यदि उसमें इस तरह की जानकारियों को नहीं लिखा गया हो। केवल यह लिख देना काफी नहीं कि सबका पूर्ण सहयोग रहा, प्रयोग अच्छे थे आदि-आदि ...।

मूल्यांकन कक्ष में मूल्यांकन कर्त्ता अनेक बार पर्ण-प्रति पर्ण बनाते समय पूर्ण आवश्यक जानकारियां प्रपत्र में नहीं लिखते हैं या हस्ताक्षर एवं स्वयं का नाम पता लिखना भूल जाते हैं।

इन सब त्रुटियों या असावधानियों के कारण यह देखा जा रहा है कि प्रायोगिक परीक्षा अब केवल एक औपचारिक परीक्षा रह गई है जिसे निपटाने वाले कार्यों की सूची में सम्मिलित किया जा सकता है।

प्रश्न यह है कि विज्ञान इकाई परीक्षा अनुभाग एवं शिक्षा-विद् इस समस्या पर अविलंब विचार करें एवं प्रायोगिक परीक्षा को औपचारिक परीक्षा होने से बचाए अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब इस परीक्षा के लिए विज्ञान शिक्षकों का बचा हुआ उत्साह भी समाप्त हो जाएगा।

- उमेश चौहान, टिमरनी

कानाफूसी

संसार में दो प्रकार के लोग हैं एक काम करने वाले दूसरे उसी काम को सुन्दरता से करने वाले। हम (सोहागपुरी) लोग दोनों में नहीं आते पर ऐसा नहीं कि हम बुद्धिमान नहीं हैं। प्रमाण, हमारे पूर्वज कहते थे-"पढ़े न लिखे-और-सोहागपुर रहते हैं" मतलब हम सब पढ़े हैं "काय भैया" नहीं हैं ?

इसलिए एक इशारा (बुद्धिमान को काफी है) यह है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू·एच·ओ·) द्वारा ध्वनि की सीमा पैंतालीस डेसीबेल निर्धारित है, लाऊड स्पीकर इस सीमा को तोड़कर पिंच्यानवे से एक सौ बीस डेसीबिल कर देते हैं जो हाई ब्लड प्रेशर, हार्ट अटैक और मस्तिष्क विकार जैसी कुख्यात खतरनाक बीमारियों को जन्म देता है। अब माफ करना साब

जिसकी जितनी बुद्धि वो उतना बतियाए,
तुलसी बुरा न मानिये, और कहां से लाए।

मतलब ये कि यदि 1539 जनसंख्या में 25 माइक बजेंगे तो साब आप बता नहीं सकते कि कौनसा गाना किस चौंगे का है और श्री रामचंद्रजी ने कभी नहीं कहा कि -- भैया रामायण माइक लगा के पढ़ो- शुद्ध हृदय इनसान, तो प्रसन्न है भगवान। तो भैया शहर की बात शहर में ही रहे तो अच्छा है।

आगे हम सभी भगवान की कृपा में बुद्धिमान हैं।

धन्यवाद ।

विनीत
दुर्गा मैया का एक भक्त

● ध्वनि विस्तारक यंत्रों की नाकाबिले बर्दाश्त चीखों के बीच इस पर्चे की चुप्पी ने असर किया हो या न किया हो लेकिन हमने भी सोचा कि सोहागपुर के आशीष सिटोके की बात इसी तरह चुपचाप दूसरे शहरों तक भी पहुंचनी चाहिए। ऐसी बात सिर्फ बुद्धिमानों के शहर में ही क्यों रहे भला। -सं.

शुरुआत एक स्कूल की

आज मैं जिस शाला में हूं,सन् 1972 के पूर्व इस शाला का नामोनिशान न था। यह मुहल्ला शहर के पूर्व में तथा हरदा स्टेशन के दक्षिण में स्थित है। यहां के बालक-बालिकाएं ट्रेनों के नीचे से निकल कर रेल की पातों को पार करके शहर की अन्य शालाओं में जाते थे। क्योंकि शहर की समस्त शालाएं स्टेशन के उत्तर-पश्चिम में थीं इसलिए इस समस्या के कारण कभी-कभी दुर्घटना भी हो जाती थी। इसी डर से बहुत से नागरिक अपने बच्चों को शालाओं में पढ़ने नहीं भेज पाते थे। यहां के नागरिकों ने मुहल्ले में शाला खुलवाने की प्रार्थना शासन से की। शासन ने प्रार्थना पर जुलाई,1972 में ध्यान दिया और शाला खुलवा दी।

शाला मुहल्ले में खुल गई इसकी खुशी सभी को हुई। शुरुआत में ही 96 बच्चों ने प्रवेश लिया। इस समय एक ही गुरूजी थे,जिनका नाम मुमताज

गुरूजी है। इस समय गुरूजी बच्चों को पेड़ के नीचे मैदान में पढ़ाते थे। यह मैदान स्टेशन और होशंगाबाद रोड के करीब था। इस कारण ट्रेन और बस का यात्री इन बच्चों को पढ़ता देख लेता था। कभी-कभी कोई विदेशी या स्वदेशी नागरिक ट्रेन से उतर कर इन बच्चों के पास आता और

फोटो खींच लेता था। बच्चों से बातचीत भी करता और टाटा करता हुआ ट्रेन में वापस बैठ जाता था।

अप्रैल,1975 तक शाला इसी प्रकार चली। इसके बाद गुरूजी ने एक कमरा किराए का लिया जिसमें शाला लगने लगी,कमरा क्या था उसे पायगा कहना ठीक रहेगा,क्योंकि दिन में बच्चे पढ़ते थे और रात में जानवर बसेरा करते थे। बच्चे जब सुबह आते तब कमरे में गोबर,लेंडी,मूत्र आदि पड़ा हुआ मिलता जिसे साफ करते और पढ़ने बैठ जाते। इस पायगा की दीवार बांस की चिम्पालियों और मिट्टी से बनी थी। इस दीवार को वर्षा ने तथा जानवरों और बच्चों ने मिलकर नष्ट

कर दी जिससे अब खुला मैदान हो गया था। इस कमरे की छत भी ऐसी थी कि लगता था अचानक गिर जाएगी और बच्चों को घायल कर देगी।

शाला मैदान में लगना ठीक रहेगा यही सोचकर गुरूजी ने शाला मैदान में लगाना शुरू कर दिया। परन्तु गुरूजी ने कुछ ही महीनों बाद एक हाल किराए पर ले लिया। इस हाल का नाम था-व्यायाम शाला अर्थात यहां पर पहलवान भाई कसरत और मल्ल-विद्या का अभ्यास करते थे। अब बच्चे दिन में पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने लगे थे। इस व्यायाम शाला की दीवार भी बांस और मिट्टी की थी,जिसे बच्चों ने नष्ट कर दी। दीवार नष्ट करने का कारण था,वर्षा ऋतु में मिट्टी का गीला होकर गिर जाना या बह जाना,जिससे बांस की चिम्पालिया दिखने लगीं,बच्चे बांस की चिम्पालियों को निकाल-निकाल कर टीम बनाते और गढ़ा-गेंद नामक खेल खेलते थे। यह खेल आगे चलकर लकड़ी का खेल बन गया और उसका दूसरा सही रूप आज का हॉकी का खेल है।

व्यायाम शाला की दीवार नष्ट होने और छत कमजोर होने के कारण शाला फिर मैदान में लगने लगी। इससे पूर्व यहां के नागरिक और गुरू शाला भवन की मांग,शासन से 1972 से करते आ रहे थे परन्तु इस मांग पर शासन ने सन् 1980 में ध्यान दिया और एक शाला भवन चार कमरों वाला बनवा दिया। जिसमें शाला लगने लगी और आज भी उसी शाला भवन में शाला लग रही है। किन्तु शाला भवन में पांच कमरे नहीं होने के कारण शाला दो पाली में लगती है। क्योंकि यहां कक्षाएं 5 हैं गुरूजन भी 5 हैं। परन्तु कमरे चार हैं। बच्चों के लिए खेलने का मैदान,झूला,सी-सॉ,फिसलनी, और बगीचा इस वर्ष लगने वाले हैं। क्योंकि गंदी बस्ती सुधार कार्यक्रम के कारण यह मुहल्ला भी उसी के अंतर्गत आता है। इसीलिए अभी स्कूल की फेन्सिंग व चारों और सुन्दर दीवार बना दी गई हैं।

शाला भवन और मैदान की स्थिति ठीक हो गई। गुरूजन पढ़ाई-लिखाई में रूचि अधिक लेने लगे। सभी मन लगाकर अधिक मेहनत करते परन्तु बच्चे और पालक इस ओर ध्यान नहीं देते थे। इसके कई कारण हैं, बच्चे खेलना,कूदना,दौड़ना,तैरना, गुलेल से निशाना लगाना,अंटी खेलना,गढ़ा-गेंद खेलना, पतंग उड़ाना,मछली मारना,बत्तखी,मुर्गी,तीतर बकरी पालना और अन्य कार्य करना पसन्द करते थे। इसी कारण यहां के बच्चे अधिक से अधिक 8 वीं और कम से कम 4 थी तक पढ़ पाते थे, परन्तु अन्य कार्यों में निपुण हो जाते थे। जिससे वे मेकेनिक, ड्राइवर,कपड़ों पर डिजाइनें बनाना,दर्जी ,मिस्त्री,बोझा ढोना आदि कार्य करते हैं। परन्तु अब कुछ-कुछ बालक और पालक दोनों पढ़ाई-लिखाई की तरफ ध्यान देने लगे हैं,जिसके कारण अब बच्चे अधिक से अधिक पढ़ाई की ओर ध्यान देते हैं। और ग्यारहवीं-कालेज तक पढ़ने की सोचते हैं।

• चौधरी मास्साब

फाइल स्कूल,हरदा

सफदर हाशमी

देश के प्रख्यात वामपंथी रंगकर्मी सफदर हाशमी गाजियाबाद के निकट एक मजदूर बस्ती में । जनवरी,1989 को कांग्रेस (आई) समर्थित मुकेश शर्मा और उसके गुंडों के कातिलाना हमले के शिकार हुए और 2 जनवरी,1989 को दिल्ली के राम मनोहर लोहिया अस्पताल में उन्होंने दम तोड़ दिया। सफदर अपने साथियों,खासकर महिला साथियों को इस हमले से रक्षा करने के क्रम में शहीद हो गये।

12 अप्रैल,1954 को कम्युनिस्ट परिवार में जन्मे सफदर का छोटी सी उम्र में ही कम्युनिस्ट विश्वदृष्टि और मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा से परिचय हो चुका था। विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के क्रम में ही 1973 में सफदर ने जन नाट्य मंच ' जनम ' की स्थापना की। सफदर पिकाटेर और ब्रेख्त के राजनीतिक नाटकों से बहुत प्रभावित थे और खास ब्रेख्तियन अंदाज में,स्थिति के अनुसार ब्रेख्त के,दूसरे लेखकों के और खुद अपने भी नाटकों में फेर-बदल करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था।

1976 में सफदर सी·पी·आई· (एम) के सदस्य बने। कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाने और पश्चिम बंगाल सूचना केन्द्र में सूचना अधिकारी रहने के बाद दिसम्बर 1983 में उन्होंने अपना पूरा वक्त रंगमंच और पार्टी को अर्पित करने का निर्णय लिया। तब तक जनम व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका था। जनम के नाटक "मशीन","औरत",गांव से शहर तक","राजा का बाजा","हत्यारे", "समरथ को नहीं दोष गोसाईं" आदि न सिर्फ दिल्ली,बल्कि पूरे देश में धूम मचा रहे थे,इन नाटकों के लेखन में सफदर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और गीत तो ज्यादातर उसी ने लिखे थे। इन सभी नाटकों में जन-जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया था। जनम अब तक 24 नाटकों की 4000 से अधिक प्रस्तुतियां कर चुका है जिन्हें 25 लाख से अधिक लोग देख चुके हैं।

सफदर और जन नाट्य मंच ने खुद को राजनीतिक नाटक करने तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि सांस्कृतिक स्वतंत्रता की हिफाजत के लिए कलाकारों तथा सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं को संगठित करने के लिए भी पहल की। मिसाल के लिए अस्सी के दशक के शुरू के सालों में जब सरकार ने नाटकों पर सेंसरशिप थोपने की कोशिश की तो उसके खिलाफ पहल की गई। 1984 के दिल्ली के सिखविरोधी दंगों के बाद सफदर तथा जन नाट्य मंच के कार्यकर्त्ताओं ने कलाकारों का विरोध प्रदर्शन आयोजित करने में पहल की। इसी प्रकार 1986 में,दिल्ली में सांप्रदायिक तत्ववादी तथा फूटपरस्त ताकतों के खिलाफ गठित की गई सांप्रदायिक सद्भाव समिति तथा उसकी गतिविधियों में सफदर ने मुख्य संगठनकर्त्ता की भूमिका अदा की। सांप्रदायिक सद्भाव समिति के अभियान के हिस्से के तौर पर जन नाट्य मंच ने "अपहरण भाई चारे का" नाम से एक नाटक तैयार किया तथा खेला,जिसमें सांप्रदायिक ताकतों के बढ़ते हमलों का प्रश्न उठाया गया था।

सफदर की सर्जनात्मक ऊर्जा जनम के बाहर भी दिखायी दी। उन्होंने टेलीफिल्मों की स्क्रिप्ट लिखी,उनके लिए गीत लिखे,एस·एफ·आई· की पत्रिका,इकनामिक टाइम्स और अन्य अखबारों में संस्कृति,रंगमंच और फिल्मों से संबंधित विषयों पर लेख लिखे,कविताएं लिखीं और क्रांतिकारी कविताओं का अनुवाद किया,परिचर्चाएं

आयोजित कीं और बच्चों के लिए लिखा। वह एक कुशल अभिनेता,गायक,वक्ता और सामाजिक-सांकृतिक-राजनीतिक क्षेत्र के एक अप्रितम आंदोलनकारी थे।

सफदर के व्यक्तित्व में राजनीतिक प्रतिबद्धता तथा रचनाशीलता के साथ स्वस्थ हास्य की जबर्दस्त क्षमता और दोस्तानापन तथा गर्मजोशी का अद्भुत संगम था। उनके साथ जिसने भी काम किया है,उसे ऐसे अनेक मौके याद होंगे जब श्रमसाध्य राजनीतिक काम के बाद की थकान या तात्कालिक क्षति के बाद आयी पस्ती के लम्हे सफदर के मज़ाकों और अनथक आशावाद से जगमगा उठे होंगे।

अपने इन गुणों,अपनी अविचल प्रतिबद्धता और दुर्दम गतिशीलता के कारण उन्हें बुद्धिजीवियों,कलाकारों,व जन-सामान्य का अपार प्रेम मिला। उनकी मृत्यु से देश की वामपंथी,जनतांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष ताकतों ने एक असाधारण रूप से प्रतिभावान और प्रतिबद्ध कलाकार और राजनीतिक कार्यकर्त्ता खो दिया है।

सफदर की हत्या पर प्रतिक्रियाएं

०भीष्म साहनी सफदर की अर्थी को कंधा देते समय काफी विचलित थे। बार-बार वे आंखें पोंछ रहे थे और कह रहे थे कि जिसका कंधा होना था उसकी देह है और जिसकी देह जानी थी वह कंधा दे रहा है।

०एक बहुत बूढ़ी महिला भयंकर धक्कामुक्की के बीच जाकर सफदर हाशमी की देह के पांव छूना चाहती थी। आसपास मौजूद कार्यकर्त्ताओं ने उसे रोका तो वह फूट-फूट कर रो पड़ी। बाद में उसने बताया कि उसका नाम मीरा देवी है और पन्द्रह साल कच्ची नौकरी करने के बाद सफदर ने उसके मालिक से लड़ कर उसे पक्का कराया था।

०सफदर के चेहरे पर जब सफेद कपड़ा खींचा जा चुका था,तब "माला" (सफदर की पत्नी) पास खड़े लोगों से पूछ रही थीं।
"अब भी क्या आपको शक रह गया है कि यह देश अपराधी और हत्यारे नहीं चला रहे हैं?
"इस मौत का बदला हम कई मौतों से लेंगे" किसी ने गुस्से में कहा था। कुछ ही मिनट पहले विधवा हुई वह युवा महिला मुड़ी थी--"तब मैं आपको सफदर का हत्यारा कहूंगी। हमें अपने तरीके से चलना है और वैसे ही हम चलेंगे। कांग्रेस में और हममें कुछ तो फर्क हो।"

जनसत्ता 4 जनवरी

०सफदर अपना नाटक अधूरा छोड़ कर चला गया। और इसी के साथ कला को सर्वहारा की चेतना और संघर्ष का वाहक बनाने के कई जवान सपने की मौत हो गई। इंकाई गुंडों ने साहिबाबाद की मजदूर बस्ती में न्यूनतम वेतन के लिए नाटक खेलने गए सिर्फ एक चौंतीस साल के खूबसूरत नौजवान की हत्या नहीं की। बल्कि राजधानी से सबसे बेहतर युवा कलाकार को हमेशा के लिए छीन लिया। इसी के साथ एक बेहद प्रतिभावान निदेशक,एक भावुक लेखक,एक युवा कवि,एक सशक्त पेंटर,एक विदान युवा सिद्धांतकार और मजदूर बस्तियों के एक चेहते हमदर्द की एक साथ मौत हो गई।
कला की शायद ही कोई ऐसी विधा हो जिसे सफदर हाशमी ने एक साथ न छुआ हो। इतनी कम उम्र में एक साथ इन तमाम विधाओं पर गहरी पकड़

रखने वाला सफदर राजधानी में अपने किस्म का अनूठा और अकेला कलाकार था। इसके बावजूद वह सिर्फ कलाकार नहीं था। उससे ज्यादा वह एक बेहतर इंसान था और उसके लिए "कला" सिर्फ कलात्मक ऊंचाईयों और पेचीदगियों का खेल भर नहीं, लोगों को एक बेहतर जिन्दगी के लिए गढ़ने का चाक था।

जनसत्ता 3 जनवरी

● पिछले दशक में राजनैतिक और नुक्कड़ नाटक अधिक क्रियाशील हुए हैं। और अगर इस हादसे के बाद जन नाट्य मंच के अटूट मनोबल को देखा जाये तो लगता है कि हाशमी की मौत आंदोलन को और अधिक सुदृढ़ करेगी तथा यह और ऊंचाईयों को छुएगा।

इंडिया टुडे, 31 जनवरी

● कुछ लोग कह रहे हैं कि सफदर की मौत जरूरी नहीं थी। इधर मुझे लग रहा है कि जरूरी थी। जरूरी इसलिए थी कि सत्ता का टुच्चापन खुलकर सामने आ सके। जरूरी इसलिए थी कि यह स्थापित हो कि अभिव्यक्ति की आजादी छोटी-छोटी चीज नहीं। जरूरी इसलिए थी कि यह स्पष्ट हो जाए कि जब इस आजादी का असल उपयोग किया जाता है तो सत्ता तिलमिलाती है और एक तरह से इस बात को मान्यता प्रदान करती है कि अपनी बात कहना-सुनना भी संघर्ष का एक औजार है। सफदर की मौत जरूरी है यह दिखाने के लिए कि एक तरफ साहित्यकों, संस्कृति कर्मियों आदि का प्रश्रय देने वाली मौजूदा सत्ता अपने बुनियादी चरित्र में कितनी बेहूदा है। सफदर की मौत ने इस मुगालते पर करारी चोट की है।

परन्तु मुख्य सवाल यह नहीं है कि वर्तमान दौर में सफदरों की मौतें जरूरी हैं या नहीं। सवाल यह है कि हम उसको किस नजर से देखते हैं और आगे के संघर्ष के लिए क्या सबक सीखते हैं। सफदर की मौत के मायने इसी दृष्टि में निहित हैं।

सुशील जोशी

आत्मचित्र : सफदर हाशमी

वो हमारे गीत क्यों रोकना चाहते हैं?

● आंध्र प्रदेश में भूमिहीन किसानों व आदिवासियों का आंदोलन पिछले 20 साल से जोरों से चल रहा है। इसी आंदोलन से जुड़ी "जन नाट्य मंडली" के जहां और जब भी कार्यक्रम होते हैं, हजारों की संख्या में गरीब, किसान व आदिवासी इकट्ठे हो जाते थे। इस मंडली के नेता "गदर" गीत व नृत्य नाटिका के माध्यम से इन लोगों में एक नई चेतना, एक नया साहस और उत्साह जगा देते थे। आज "गदर" आंध्र प्रदेश में कोई नाटक नहीं खेल सकते --सरकार ने ऐलान किया है कि जो भी उन्हें जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाएगा उसे 50,000 का इनाम मिलेगा।

● उधर पंजाब में सरकार और आतंकवादियों के खिलाफ खूंखार कवितायें लिखने वाले कवि अवतार सिंह "पाश" और जैमल पड्डा को आतंकवादियों ने कत्ल कर दिया।

● वरा वरा राव को आंध्र की पुलिस ने झूठे केसों में फंसाकर लम्बे समय तक जेल में डाले रखा।

● बंगाल में संथाल आदिवासियों के जुझारू कवि सोरेन को वहां की पुलिस और गुंडों ने सरे आम कत्ल कर दिया।

● दिल्ली में हाल ही में सरकार ने कानून बनाया कि कोई भी नाटक या नृत्य नाटिका-कार्यक्रम आयोजन करने से पहले सरकार को उसका स्क्रिप्ट दिखाकर इजाजत लेना होगी।

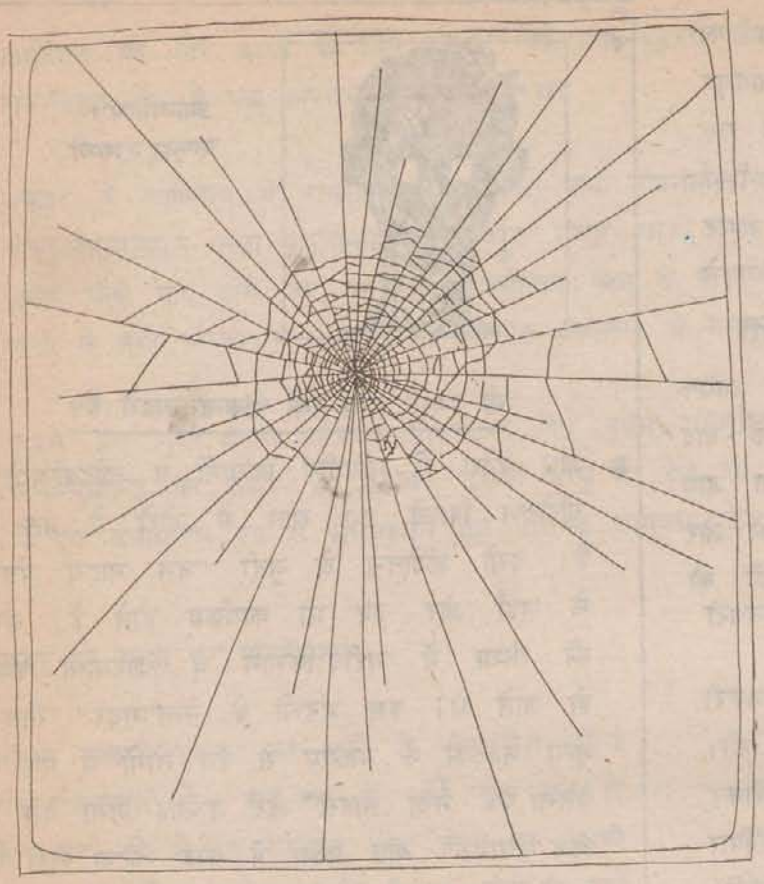

कविता में...

कविता में
जब कोई पहाड़ होता है
कविता के शब्द
सीढ़ी बन जाते हैं

कविता में
जब कोई गहरा
अंधेरा कुंआ होता है
कविता के शब्द
लौटती हुई आवाज़ बन जाते हैं

कविता में
जब कोई ज़मीन होती है
कविता के शब्द
कुदाल और फावड़ा बन जाते हैं

कविता में
कविता के शब्द
जब रास्ता दिखा रहे होते हैं
मैं कविता जी रहा होता हूं।

•राग

सन्नाटों के बाद....

समूचे नाटक तंत्र को नंगा
करने की कोशिश में
एक छोटा नाटक.....

कितना सजीव कितना साफ
हो सकता है कि
दर्शकों को अपने ऊपर
हुआ हमला एकदम
स्वाभाविक लगने लगता है
कोई आश्चर्य नहीं होता किसी को
मरते हुए रामबहादुर और
खून में सराबोर सफदर को देख
हत्या और बलात्कार को
ढांके रखती है उनकी
उत्सवी मुस्कान

और लोगों के गहन शोक के बीच
दम तोड़ता है हमारे समय का सफदर
कहीं नहीं पकड़े जाते हत्यारे
संरक्षण देती है उन्हें व्यवस्था
एक घिनौनी अराजक कविता की तरह
और हत्याकांड के सन्नाटों के बाद
धीरे-धीरे जागता है सफदर
लोगों की आंखों में
लोगों के हाथों में
हम सबकी कार्यवाहियों में।

• अखिल पगारे, होशंगाबाद

एक मधु क्रांति : गन्ना और चीनी

सिकन्दर के साथ आए यूनानियों ने यहां से अपने संबंधियों को लिखा था,"सिन्धु के जंगली लोग ऐसे सरकंडे उगाते हैं,जिनसे ये अपनी जरूरत का साग शहद प्राप्त करते हैं।"इसमें उनका कोई कसूर नहीं। बेचारों ने भारत आने से पहले गन्ने के दर्शन ही नहीं किए थे। वनस्पतिज्ञों को इसमें कोई सन्देह नहीं रहा है कि दक्षिण-पूर्व एशिया का क्षेत्र ही ईख का जन्म-स्थान है। इस क्षेत्र में भी आदिकालीन किस्में भारत में ही मिली हैं। 5 वीं सदी में भारत से ये मिठास ईरान पहुंची और 7 वीं सदी में मिस्र और स्पेन ने भारतीय मधुरता का स्वाद लिया। 16 वीं सदी में नयी दुनिया,यानी अमरीका को मिठास का आभास मिला। सदियों तक यूरोप वासी एक ही मीठी चीज को पहचानते थे--शहद। जब पहली बार भारतीय खांड या खांडसारी उनके मुंह लगी तो मुंह मांगे दामों पर बिकने लगी। जिसने भी चखा दीवाना हो गया।

फिर उन्होंने मिठास का एक नया स्रोत खोजा-चुकन्दर, यानी शुगर बीट सन् 1747 में एकेडेमी आफ रॉयल साइंस बर्लिन के मारग्राफ नाम के वैज्ञानिक ने चुकन्दर में शर्करा होती है,यह खोज की। उधर नैपोलियन ने इसे बड़ा प्रोत्साहन दिया,क्योंकि"चीनी इंग्लैंड से आती थी।"दुकानदारों के देश ब्रिटेन की बधिया बिठाने के लिए नैपोलियन ने सन् 1806 में आदेश जारी किया कि ब्रिटेन के साथ हर तरह का व्यापार बन्द किया जाता है,जिन चिट्ठियों और पैकेटों पर अंग्रेजी में पता लिखा होगा,उन्हें जब्त कर लिया जाएगा।

25 मार्च,1811 को नैपोलियन ने चुकन्दर से चीनी बनाने के उद्योग की घोषणा की थी और देखते ही देखते सारे फ्रांस में चुकन्दर से चीनी

बनाने के कारखाने खड़े हो गए। अंग्रेज इस बात से बड़े चिढ़े। कुछ अंग्रेजी अखबारों ने भी नेपोलियन के इस कदम की भर्त्सना करते हुए कुछ कार्टून छापे थे। एक व्यंग्य चित्र में नैपोलियन महान को काफी के प्याले में एक बड़ी-सी चुकन्दर निचोड़ते हुए दिखाया गया। एक दूसरे व्यंग चित्र में नैपोलियन के बेटे की आया उसको चुकन्दर चुसाते हुए कहती है--चूसो,चूसो प्यारे,तुम्हारे पापा कहते हैं,यह चीनी है।

और एक दिन वह भी था,जब गन्ने को हिन्दुस्तान में बीच से बोकर पनपाना ही बड़ी टेढ़ी समस्या बनी हुई थी। बात सन् 1911 की है,जब डाक्टर बार्बर ने बीच से गन्ने की पौध तैयार करने की कोशिश की। गमलों में उन्होंने बीज बोए और और चूहों,गिलहरियों से बचाने के लिए ऊंचाई पर रख दिए। एक भी बीज नहीं फूटा। अचानक बार्बर को उत्तर भारत के दौरे पर जाना पड़ा जाते समय ये काम अपने सहायक वेंकटरामन् को सौंप गए। वेंकटरामन् ने सोचा कि गन्ना तो गर्म जलवायु का पौधा है,इसे सामान्य प्राकृतिक परिस्थितियों में ही बीच से उगाया जाए। फिर रामास्वामी पिल्ले और वेंकटरामन्,रोज सुबह कोयम्बटूर में गन्ने के खेतों का चक्कर लगाते और शाम तक कपड़े की थैलियों में बीच इकट्ठे करते रहे। इन बीजों को गमलों में बोया गया,पर गमले खुले में रखे रहे।

हफ्ते भर बाद बीज फूट आए। खूब मजबूत कल्ले फूटे।डा॰ बार्बर को तार द्वारा सूचित किया गया। वापस आकर कोयम्बूटर में देखा तो माथा ठोंक लिया। उनका ख्याल था कि गन्ने के बीज उगाए गए पौधे तो बड़े नाजुक होने चाहिए। हालांकि गन्ने की पौध के बारे में उनका ज्ञान कोरा किताबी था। बस,उन्होंने फैसला किया कि यह तो गन्ने की नहीं घास की पौध है। उन्हें धोखा दिया गया है। लिहाजा पौध नष्ट करने का हुक्म दिया गया। कोई दो सौ गमलों में वेंकटरामन् ने पौध रोपी थी--इसको नष्ट करने के लिए मजदूर चाहिए थे। गनीमत ये हुई,कि दूसरे दिन छुट्टी पड़ गई। मजदूर कहां से आते। उस दिन वेंकटरामन् बार्बर के पास गए और समझाया कि छोडिए,ये गमले यों ही पड़े रहेंगे। हम इन पर समय नष्ट नहीं करेंगे। लिहाजा बार्बर ने आदेश रद्द कर दिया।

सामान्य घासों में 2-3 महीने में फूल आ जाते हैं,पर गमलों में फूल नहीं आए। 5 वें महीने गन्ने की पोरियां स्पष्ट हो गईं। इस तरह बड़े उपेक्षापूर्ण वातावरण में बिन बुलाए,बिन चाहे,बीज से गन्ने पनपे। यही थे गन्ने की उन तमाम किस्मों के "जनकों के जनक" जिन्होंने देखते ही देखते गन्ने की पैदावार दुगनी कर दी। डा॰ बार्बर ने उस समय खुश होकर अपने सहायक को 10 रु॰ महीने अग्रिम वेतन वृद्धि देने की सिफारिश की जिसे लाल-फीताशाही ने ठुकरा दिया। बाद में वही वेंकटरामन् सर टी॰एस॰वेंकटरामन् बने,सर-आंखों पर बिठाए गए,भारतीय चीनी उद्योग ने उन्हें आधुनिक विश्वामित्र कहा। यही आदमी था,जिसने आज से लगभग 50 वर्ष पहले भारतीय किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए विज्ञान का उपयोग किया।

पहली हरित-क्रांति सचमुच मधुरता के स्रोत गन्ने से ही शुरू हुई थी। उन दिनों लंदन के "डेली हेरल्ड" ने वेंकटरामन् पर कटाक्ष करते हुए लिखा था,कि उसने कुदरत को खूब उल्लू बनाया और हिन्दुस्तान को मिठास से भर दिया।

• रमेशदत्त शर्मा

प्रतिक्रियाएं ... पृष्ठ 13 से

•देश के कई भागों में स्वतंत्रता और लोकतंत्र का मतलब गुंडा तत्वों को लाइसेंस देना रह गया है। अब यह प्रक्रिया राजधानी पर दस्तक दे रही है। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो अपने को यह कह कर दिलासा दे रहे होंगे कि सफदर हाशमी"उनमें"से एक नहीं था--अन्ततः वह एक कम्युनिस्ट ही तो था। परन्तु अगर इसके बाद भी विरोध में आवाज नहीं उठाई गई,वह दिन दूर नहीं जब पूरा देश गुंडों और उसके गिरोहों की दया पर जीने को मजबूर हो जाएगा। **संपादकीय,टाइम्स आफ इंडिया,** 4 जन

क्यों न, मैं भी नकल कराऊं!

शायद शीर्षक पढ़कर चौंक तो जरूर गए होंगे। यह मैं, यानी आज का शिक्षक कह रहा हूं। पर मेरी आत्मा यह काम करने की मुझे इजाजत नहीं देती। मजबूर हूं। आज के जमाने में मैं अपने कर्त्तव्य का निर्वाह भी तो नहीं कर सकता। लोग ताने कसते हैं। बड़ा आदर्शवादी बनता है। अपने आपको बड़ा तोप-चन्द समझता है और भी न जाने क्या-क्या।

इतना पढ़कर आप सोच में जरूर पड़ गए होंगे। पर सोचने और समझने की कोई बात नहीं है। 80 प्रतिशत शिक्षक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह ही कहां करते हैं। बचे 20 प्रतिशत, तो वह भी धीरे-धीरे कोल्हू के बैल हो रहे हैं। कोल्हू के बैल बनना पसन्द नहीं आता, तो जबरदस्ती कोल्हू का बैल बना दिया जाता है। बेचारे शिक्षक को मजबूरन अपना कर्त्तव्य भूलकर दूसरों के साथ जुड़ना ही पड़ता है। क्या करें, जमाना ही ऐसा है। वक्त पर अधिकारी भी तो साथ नहीं देते हैं। उन्हें भी अपने जीवन का डर बना रहता है। भला झंझट मोल कौन ले?

शायद आप मानने को तैयार नहीं हैं? पर ऐसे शिक्षकों में से एक, मैं भी हूं। जो अपने कर्त्तव्य को धीरे-धीरे भूलता जा रहा है। क्यों भूल रहा हूं? क्यों अपने कर्त्तव्य से विमुख हो रहा हूं? लीजिए मेरी छोटी सी कहानी भी सुन लीजिए जो एक हकीकत है।

पर्यवेक्षक के रूप में मेरी ड्यूटी सन् 1987 में म0प्र0 की एक माध्यमिक शाला में लगी थी। पहले ही दिन मुझे जो नजारा देखने को मिला उससे शिक्षकीय अधिकार को जबरदस्त धक्का लगा। कोई पर्यवेक्षक कहने वाले भी नहीं थे। हर बच्चा आराम से पेपर में आए प्रश्नों को, एक कोरे कागज पर तेजी से उतारता और पेशाब के बहाने बाहर जाकर आराम से एक जगह बैठकर प्रश्नों के अनुसार उत्तर लिखता और आकर के प्रश्न हल करता। इस काम में उनके अपने रिश्तेदार या फिर दोस्त भरसक मदद करते। जब मुझसे बर्दाश्त न हो सका तो केन्द्राध्यक्ष से कहा"सर इन बच्चों को स्कूल मैदान से बाहर भगाया जाए"। उसने भगाया जरूर पर आवाज में वो दम नहीं था। शायद बच्चों के पैसे से ही अभी उन्हें अपना जीवन चलाना था। भला आवाज में दम कहां से होता? लड़के यह कहते हुए और ज्यादा आने लगे कि इस स्कूल का यही रिवाज है। सुनकर स्कूल के शिक्षकों के प्रति मन में कड़ुवाहट सी भर गई। सोचा जैसे ये लोग शिक्षक बने हैं, वैसे ही अपने बच्चों से करवा रहे हैं। शराब पीने वाला शिक्षक भला बच्चों से कैसे कह सकता है कि शराब मत पियो।

खैर। बच्चे चिट लाते जाते और मैं उसे पकड़ता

जाता। जब बच्चों की टिक्की न चली तो एक लड़का खड़ा होकर जान से मारने की धमकी देने लगा। मैंने तुरन्त इसकी सूचना केन्द्राध्यक्ष को दी। उसने कहा-"तुम चिट-विट पकड़ना छोड़ो भई,कहां झंझट में पड़ते हो,आंख बंद कर चुपचाप घूमते रहो।" सुनकर मेरे पैरों तले जमीन खिसक गई। लड़के को डांटने के बजाय मुझे डांटा जा रहा है। शायद मैं ही कुसूरवार था। मैंने भी कहा-"क्या मेरी ड्यूटी इसीलिए लगाई गई है कि मैं आंख बन्द करके घूमूं। इससे अच्छा मेरी ड्यूटी रद्द की जाए? इस पर केन्द्राध्यक्ष नाराज होते हुए बोले--

--ड्यूटी मैंने नहीं लगाई। जो लगाए हैं उनके पास जाओ।"

परीक्षा खत्म होने पर मैं स्कूल से बाहर निकला। पर सड़क पर उस लड़के के साथ अनेक लड़कों को देखकर भय से शरीर कांप उठा। किसी तरह स्थानीय शिक्षक के साथ हाई स्कूल पहुंचा। प्राचार्य को इसकी सूचना देते हुए मैंने अपनी ड्यूटी रद्द करने की मांग की।

प्राचार्य ने भी अपने को अलग करते हुए कहा-"मैंने आपकी ड्यूटी नहीं लगाई। ड्यूटी लगाने वाले आपके ए0डी0आई0एस0 हैं। उन्हीं के पास जाओ।"

एक ऊंचे अधिकारी के इस तरह के व्यवहार से मेरा अपना शिक्षकीय कर्त्तव्य रो उठा। मैंने कहा-"स्कूल तो आपके अण्डर में है सर,आप कुछ कार्यवाही कीजिए न"।

इस पर प्राचार्य महोदय मुझे समझाते हुए बोले-'क्यों अपनी जान को जोखिम में डालते हो? क्या मिल जाएगा तुम्हें नकल करते बच्चों को पकड़ने से। उल्टा ही दुश्मनी मोल लेते हो। आदर्श बनने से तुम्हें सरकार इनाम नहीं दे देगी।

अरे भाई नकल-वकल पकड़ना छोड़ो,चुपचाप आओ-जाओ। क्यों झंझट में पड़ते हो।"

सुनकर रहा सहा कर्तव्य भी डगमगाने लगा। ऊंचे अधिकारियों का ये हाल है तो मेरा क्या होगा। सोच कर मन रो उठा।

शाम को ए0डी0आई0एस0 से मिलने उनके घर गया। वस्तुः स्थिति की उन्हें जानकारी दी। वे बोले-"मैं मानता हूं ड्यूटी मैंने लगाई है। पर इस पर मैं कुछ नहीं कर सकता। जाओ अपने प्राचार्य महोदय से कहना वे ही कुछ करेंगे"।

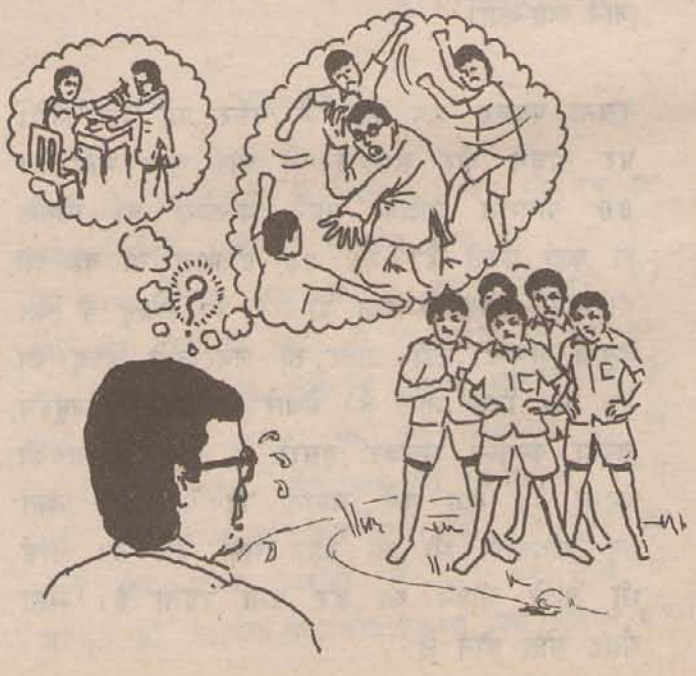

सुनकर जैसे मेरा मुंह ही बन्द हो गया। चुपचाप चला आया। फिर प्राचार्य महोदय से बहस हुई। अंत में मैंने लिखित आवेदन दिया जिस पर प्राचार्य ने केवल यह लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिए कि"तत्काल व्यवस्था की जाए"।

व्यवस्था तो दूर रही कोई व्याख्याता या अधिकारी परीक्षा के दौरान भेजा भी नहीं और जो एक रोज गए भी, तो खाने-पीने की जगह जो बैठे, तो सिर्फ जाने के लिए ही उठे।

सोचता हूं कितनी बढ़िया है हमारी शिक्षा। कितने कर्त्तव्यनिष्ठ हैं हमारे शिक्षक। कितने आदर्शवादी हैं हमारे उच्च अधिकारी।

मेरा कर्त्तव्य फूट-फूटकर रो पड़ा। मुझे हार माननी ही पड़ी। अब सोचता हूं,

"क्यों न मैं भी नकल कराऊं"बच्चे भी खुश और जेब भी गरम।

- जी0 आर0 पारकर, राजिम

पाठकों के विचार
लेख : कुछ पिटे हुए अनुभव

पिटाई इलाज नहीं

मैंने अभी-अभी होशंगाबाद विज्ञान का अंक-27 देखा। श्री सुशील जोशी के लेख"कुछ पिटे हुए अनुभव" ने बरबस ध्यान आकृष्ट किया और मैं बिना सांस रोके इसे पूरा पढ़ गया। लेख पढ़ते ही मुझे भी खट्टे-मीठे अनुभव याद हो आए और एक अध्यापक होने के नाते मैं ये सब आपको भी बता रहा हूं।

मेरी प्रारम्भिक पढ़ाई उत्तर प्रदेश के एक गांव में हुई। पांचवी कक्षा तक के अध्यापक कुछ ऐसे ही थे जैसे जोशी जी ने वर्णित किए हैं। उनके दंड देने का तरीका भी यही था- धूप में खड़े रखना,डंडे से हाथों की धुनाई,कानों की हाथों से शामत आना,मुर्गा बनाना या एक दूसरे के थप्पड़ रसीद करवाना। लेकिन अभी मुझे लगता है कि एक-दो बार को छोड़कर दौड़त करने के पीछे उनका उद्देश्य बच्चों को ठीक करने का था। मैं कक्षा में अच्छे लड़कों में से रहा,तो मेरी पिटाई सबसे कम या कहिए कि नहीं के बराबर हुई। लेकिन उस मानसिक यन्त्रणा से मुझे भी कई बार गुजरना पड़ा,जब मुझे अपने साथियों की मरम्मत करनी पड़ी।सचमुच कितना पीड़ादायक था वो,अब लगता है कि वो सब कैसे सहन किया होगा।

नवीं कक्षा में मुझे स्कूल बदलना पड़ा और नए स्कूल में पी0टी0 के एक ऐसे सर से सामना करना पड़ा जो,प्रार्थना के समय या पी0टी0 कराते वक्त गलती होने पर,बच्चों की डंडे से जमकर धुनाई करते थे। उनके इस व्यवहार को देखकर

मैं नवीं कक्षा में एन·सी·सी· जूनियर विंग में प्रवेश नहीं ले पाया। उन दिनों जब भी मैं किसी लड़के की पिटाई होते देखता तो अन्दर तक हिल जाता और अन्दर से बार-बार कुछ करने की इच्छा होती।

दुर्भाग्य से या सौभाग्य से मैं तीसरी कक्षा से एम0एस-सी0 तक कक्षा प्रमुख(मानीटर) रहा और अनेक बार ना चाहते हुए भी अपने साथियों को थप्पड़ लगाने पड़े। वो मेरे साथी क्या मुझे कभी माफ कर सकेंगे?

5 सितम्बर, 1986 को मैंने एक अध्यापक के रूप में केन्द्रीय विद्यालय ज्वाइन किया। "शिक्षा दिवस" के दिन ज्वाइन करते वक्त मैंने मन ही मन ये प्रतिज्ञा की थी कि मैं किसी भी छात्र-छात्रा की पिटाई नहीं करूंगा। शुरू के दो महीने मैं राजकोट (गुजरात में) रहा और मैंने निष्ठापूर्वक अपना कार्य किया। परिणामतः छात्रों में मैं लोकप्रिय हो गया। लेकिन 2 महीने बाद मेरा वहां से ट्रांसफर हो गया। मेहसाणा आने के बाद मैंने एक बात नोट की- छात्रों में न तो अनुशासन और न ही अध्यापकों के प्रति कोई सम्मान की भावना थी। मैंने परिस्थिति का निरीक्षण किया और पता लगाया कि ऐसा क्यों है। फिर मैंने छात्रों को खुद नमस्कार करना शुरू किया, एक-दो दिन के बाद लगभग सभी छात्रों ने अन्य अध्यापकों को भी"विश" करना शुरू कर दिया। उनके साथ मैंने सख्त मेहनत की और उन्हें आगे बढ़ने के मार्ग सुझाए। मेहनत रंग लाई और पहले वर्ष रिजल्ट 100 प्रतिशत रहा।

ये बात तो थोड़ी अलग है। मसला पिटाई का था। लगभग ढाई वर्ष के अध्यापन-काल में मैंने एक लड़के को एक दिन थप्पड़ लगाया। पढ़ाते वक्त मैंने एक बार उसे शरारत करने से मना किया। इसके बावजूद उसने एक चॉक का पाउडर करके, बराबर वाले लड़के के बालों में डाल दिया। मैंने उसे खड़ा किया और एक थप्पड़ लगाया। उसने कहा-"सॉरी सर"मैंने उसे बिठा दिया। लेकिन अगले पांच मिनट मेरे कैसे गुजरे बता नहीं सकता। मेरा व्रत जो टूट गया था।

पर मेरे कुछ साथी ऐसे भी हैं जो डंडे से छात्रों की पिटाई भी कर देते हैं या कान भी ऐंठ देते हैं। अगर मेरे सामने ऐसा होता है, तो मैं इसका विरोध करता हूं। वैसे भी इन स्कूलों में शारीरिक दंड देना मना है। लेकिन छात्र जो मानसिक कष्ट सहन करते हैं, क्या कोई उसके बारे में भी सोचता है? कभी-कभी तो हद ही हो जाती है। एक दिन मुझे पता चला कि मैडम ने एक लड़के को सौ उठक-बैठक लगाने की सजा दी। उसका कसूर ये था कि वो पिछले दिन (टेस्ट के दिन) नहीं आया था। छोटी कक्षा का बच्चा होने के कारण थोड़ी उठक-बैठकों के बाद ही उसे चक्कर आ गए। लेकिन ये घटना कई दिन बाद पता चली।

अभी तक मेरा अनुभव ये है कि आज के अध्यापक बच्चों के भविष्य के बारे में कम और अपने रिजल्ट या अपने स्वार्थों के बारे में ज्यादा सोचते हैं। त्याग की भावना में कमी आई है। कारण अनेक

हैं। और यदि कोई अध्यापक ठीक से अच्छी तरह बच्चों को पढ़ाना चाहे या उन्हें उचित मार्गदर्शन देना चाहे तो उसे बांकी मठ्ठर साथियों के व्यंग्य

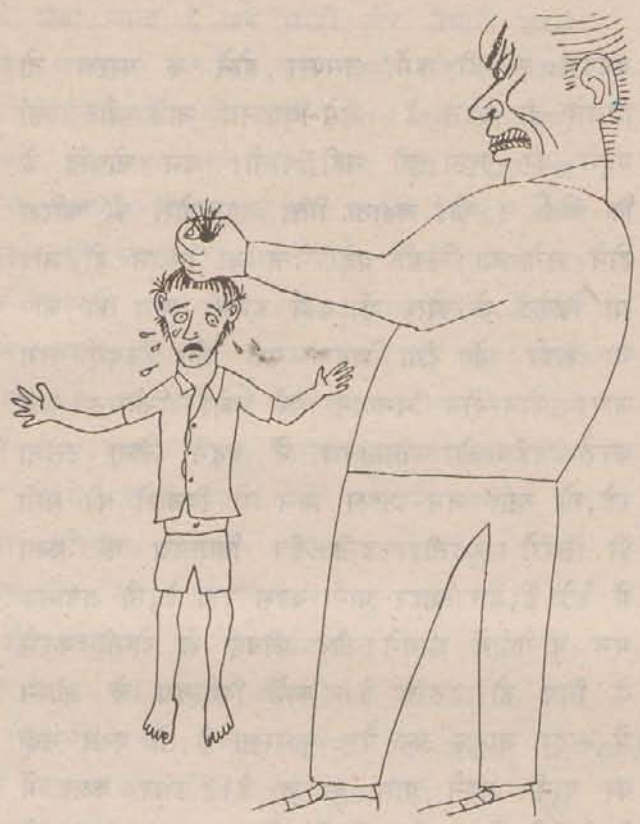

बाणों को भी सहना पड़ता है। सिर्फ कुछ प्रतिशत ही अपने आदर्शों पर अटल रहते हैं। लेकिन मैं समझता हूं कि यदि हम अपना कार्य निष्ठापूर्वक करें, तो ये ऐसा क्षेत्र है जिससे ज्यादा आत्मसंतोष एवं संतुष्टि, और किसी भी व्यवसाय में नहीं मिल सकती। मैं दृढ़-प्रतिज्ञ हूं कि अपना कार्य बिना पिटाई के निष्ठापूर्वक करता रहूंगा। पिटाई इलाज नहीं है।

आज बच्चों को प्यार एवं सहानुभूति चाहिए, उन्हें एक ऐसा सहारा चाहिए जो उनकी परेशानियों को सुन सके, समझ सके और उनका समाधान कर सके। ऐसा सहारा अध्यापक ही हो सकता है। इसका कारण यह है कि बच्चों के माता-पिता उन्हें सब कुछ दे सकते हैं - अच्छी किताबें, अच्छी ड्रेस, सभी सुविधाएं लेकिन पढ़ाई और सहानुभूति के लिए वक्त नहीं।

सारे कोर्स बदल गए हैं। जो उनके मम्मी-पापा ने पढ़े, वो सब अब नहीं हैं। कुछ बताने के लिए पहले उन्हें खुद पढ़ना होगा, जो वे कभी नहीं कर सकते। अतः कभी पास-पास बैठेंगे तो ज्यादातर बातें होंगी फिल्मों की, टी0वी0 के सीरियलों की, खेलों की या फिर राजनीति की। यही बात पुराने अध्यापकों की भी है। नई चीजों को, नए परिवर्तनों को वे भी आसानी से सहन नहीं कर पाते। और बच्चों पर झल्लाकर अपना गुस्सा निकालते हैं। एक त्याग भरे, सम्मानजनक गुरू-शिष्य के रिश्ते को व्यवसायिक रूप मिल गया है। लेकिन क्या बिना विनम्रता के कोई कुछ सीख सका है? पिटकर भी कोई सीख सका है? कभी नहीं। इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि इस पाशविक प्रवृत्ति को रोकें और बच्चों को शारीरिक दंड के साथ-साथ मानसिक यन्त्रणा से भी बचाएं। मेरी अपने साथियों से यही अपील है।

• **सत्यप्रकाश वर्मा**
स्नातकोत्तर अध्यापक,
केन्द्रीय विद्यालय,
मेहसाणा

मन लागो मेरो ••• बाल गोपालन में

जिसको अपने जीवन का उद्देश्य (मिशन) मिल जाता है, वही अपने जीवन का सही-सही उपयोग कर पाता है। न जाने क्यों, हम सब अपने-अपने जीवन को "सुरक्षित" बनाने के फेर में पड़े हुए हैं? हम अपने बच्चों को भी यही सिखाना चाहते हैं- कि वे अपने आपको संभाल लें। हम चाहते हैं कि वे खूब पढ़ें और खूब कमाएं। वे इतना पढ़ लें और इतना लिख लें कि लोग उनको ज्ञानी मानने लगें, और ढेर सारा पैसा देने लगें। आज पैसा ही तो जीवन बन गया है। पैसे के बिना कुछ होता-हवाता नहीं। अपने चारों ओर हम ऐसा ही एक माहौल बनालेते हैं। इस माहौल की वजह से मन में डर बना रहता है। आदमी सोचने लगता है कि अगर मैंने अपनी सुरक्षा के साधन नहीं जुटाए और ढेर सारा धन नहीं कमाया तो मेरा समूचा जीवन ही विफल हो जाएगा।

बचपन से ही हमें असफल होने के कारण तो मिलते ही रहते हैं। जैसे-विद्यालय जाने और वहां पढ़ने की इच्छा ही नहीं होती। मन सोचता है कि कोई न कोई बहाना मिल जाए, जोरों की बारिश होने लगे या किसी बड़े नेता का निधन हो जाए या क्रिकेट के खेल में कहीं हमारी जीत हो जाए या शहर में दंगा भड़क उठे और कर्फ्यू लग जाए। रोज-रोज भगवान ऐसे कोई निमित्त खड़े करते रहें और विद्यालय में पढ़ने जाना टलता रहे, तो बात बन जाए। मन में विचारों की ऐसी ही तरंगें उठती रहती हैं। विद्यालय की कक्षा में बैठे हैं, और बाहर पानी बरस रहा है, तो अचानक मन पानी में भीगने और कीचड़ से दोस्ती करने के लिए हो उठता है। कभी विद्यालय के आंगन में खड़ा जामुन का पेड़ पुकारता है, तो कभी नदी का पानी अपने पास बुलाता है। उधर कक्षा में बैठते हैं, तो वहां नदियों के नाम रटने पड़ते हैं और यह याद कर लेना होता है कि फूल में से फल कैसे और क्यों पैदा होता है? न मालूम क्यों, हमारे चारों और एक ऐसा भ्रम फैलाया गया है कि विद्यालय के दरवाजे से निकलने वाला हर बच्चा अपने जीवन में सफल हो ही जाता है। जबकि आज हमारे इन विद्यालयों में हजारों बच्चे रोज-रोज अपमानित होते रहते हैं। हम उनको निकम्मा और बुद्धू बनाते रहते हैं। सारी व्यवस्था ही ऐसी बनी है। अपने शिक्षा-मण्डलों की परीक्षाओं के जरिए छात्रों पर पास-नापास के ठप्पे लगा-लगाकर हम उनको आशा-निराशा के भंवर जाल में फंसाते रहते हैं। इतना सब होने पर भी हमारे विद्यालयों की और परीक्षा लेने वाले शिक्षा-मण्डलों की प्रतिष्ठा बराबर बनी रहती है, क्योंकि ऊपर पहुंचने और आगे बढ़ने की यही एक सीढ़ी मान ली गई है।

बी0ए0, बी0काम0, एम0काम0, बी0एस-सी0, एम0एस-सी0 की परीक्षाएं पास कर लेने के बाद जब हमारे छात्र काम की तलाश में निकलते हैं, तो हर जगह उनसे कहा जाता है, आप थोड़ी और तैयारी करके आइए। लगातार 15, 16, 17 सालों तक विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ने और पास हो जाने के बाद भी जब हमारे छात्रों को ऐसी उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, तो उनका मन अपनी विफलता की व्यथा से भर जाता है। वे जले पर नमक छिड़कने जैसी पीड़ा का अनुभव करते हैं, और सोचने लगते हैं कि जरूर हममें ही कोई खामी रह गई है या फिर वे अपनी तकदीर को कोसने लगते हैं। दूसरी तरफ जिनको चटपट काम मिल जाता है, वे अपने भाग्य को सराहने लगते हैं। उनका परिवार उनकी सफलता पर फूला नहीं समाता है। सहसा उनकी शान बढ़ जाती है। घर में और समाज में वे प्रतिष्ठित बन जाते हैं। उनके लिए नए कपड़े और नए जूते खरीदे जाते हैं। बातचीत का उनका अपना तौर-तरीका भी देखते ही देखते बदल जाता है। इस शान को और इस आन को क्या कहा जाए?

असल बात यह है कि न तो यह सफलता सच्ची सफलता है, और न यह विफलता ही सच्ची विफलता है। क्योंकि इन सफल या विफल लोगों से समाज को तो कोई लाभ होता ही नहीं है। सफल लोगों के कारण आज की इस गलत व्यवस्था की अपनी प्रतिष्ठा बनी रहती है, और विफल लोग अपनी महत्वाकांक्षा के फेर में पड़कर आज की दुर्व्यवस्था के साथ चिपके रहना चाहते हैं।

आज के इन विद्यालयों और महाविद्यालयों की कसौटी पर यदि देखा जाए तो न तो गांधीजी और न ही गिजुभाई उसमें खरे उतर पाएंगे। गांधीजी की बैरिस्टरी चली, जब दक्षिण अफ्रीका में हो रहे अन्यायों से लड़ने के लिए उन्होंने वहां अपनी कमर कसली। गिजुभाई का जीवन तब पलटा, जब उन्होंने अपने पुत्र का सही लालन-पालन करने और उसको सही शिक्षा-दीक्षा देने का निश्चय कर लिया।

जीवन का अपना कोई उद्देश्य निश्चित करके उसी के लिए जूझने और उसी के लिए मरने में जीवन की सच्ची सार्थकता है। जो जीवन में किसी के इशारे पर चलने का और समाज में प्रचलित रूढ़ियों और रिवाजों को अपनाने का रास्ता पसन्द करता है, उसका जीवन तो नदी की धार में बह रही एक बेजान लकड़ी का-सा होता है। उसकी अपनी न तो कोई दिशा होती है, और न कोई निश्चित विचारधारा होती है। लकड़ी तो बस बहना जानती है। सामने आई हर लहर के साथ वह इधर से उधर और उधर से इधर पलटती रहती है। इस पार से उस पार पहुंचती है। रास्ते के हर पत्थर से टकराती है। बड़ी चट्टान को बगल देकर आगे बढ़ जाती है। संभलकर जी लेने का यही एक तरीका वह जानती है।

पर गिजुभाई को देखिए। वे तो बस, उठकर खड़े हो गए और अपने से पूछने लगे कि अपने पहले बच्चे को अच्छी शिक्षा देने के लिए वे खुद क्या करें? उन्होंने खुद सीखना शुरू किया। मित्रों ने मांटेसरी की पुस्तकें दीं, तो उनको मनोयोग के साथ पढ़ा और उनकी बातों को अपने जीवन में उतारना शुरू कर दिया। ढेर सारे प्रयोग किए।

बच्चों को सिखाया भी और उनसे सीखा भी। ऐसे-ऐसे प्राणवान प्रयत्न और प्रयोग किए कि पूरे देश में मांटेसरी की शिक्षा-पद्धति चल पड़ी। स्वयं इटली देश में मांटेसरी को जो प्रतिष्ठा मिली, उससे कई गुनी अधिक प्रतिष्ठा गिजुभाई ने अपने भारत में दिला दी।

गिजुभाई ने अपने जीवन-काल में इतना पुरुषार्थ किया कि आज उनके निधन के 50 सालों के बाद भी सारे भारत में नए-नए मांटेसरी बाल-मंदिर और बाल विद्यालय खुलते ही रहते हैं। गिजुभाई ने स्वयं इतनी शक्ति लगाई और जीते-जी ऐसी निष्ठा भरी आवाज उठाई कि बाल-शिक्षा की बात माता-पिताओं के गले उतर कर ही रही। गिजुभाई के रास्ते में कोई रुकावट खड़ी नहीं रह सकी। उन्होंने अपने सामने आई हर चट्टान को चुनौती दी, क्योंकि अपने जीवन का उद्देश्य उनके सामने सतत् बना रहा। उनको अपना मिशन मिल चुका था। उसको छोड़कर दूसरा कुछ सोचने के लिए उनके पास समय रहा ही नहीं था। अपने उद्देश्य को सिद्ध करने में वे इतने तल्लीन हो गए कि जीवन के अंत समय तक उसी को पकड़े रहे। अपनी सोची मंजिल तक पहुंचने के लिए उन्होंने क्या-क्या नहीं किया? गिजुभाई ने न सिर्फ बच्चों के लिए नहीं लिखा, बल्कि माता-पिता और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए भी भरपूर लिखा। इसी सिलसिले में उन्होंने नूतन बाल-शिक्षण संघ की स्थापना की। नए बाल-शिक्षक तैयार करने के लिए अध्यापन मंदिर के नाम से शिक्षक-प्रशिक्षण-विद्यालय चलाकर 500 से अधिक शिक्षक भाई-बहनों को नई बाल शिक्षा की दीक्षा दी। माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं तक बाल-शिक्षा का सन्देश पहुंचाने के लिए उन्होंने अपनी गुजराती "शिक्षण पत्रिका" के साथ मराठी और हिन्दी में भी "शिक्षण पत्रिका" निकालनी शुरू की। स्वयं गुजराती "शिक्षण पत्रिका" के संपादक भी बने रहे। उनकी सहयोगिनी श्रीमती तारा बहन मोडक ने मराठी "शिक्षण पत्रिका" का काम संभाल लिया। काशिनाथ त्रिवेदी ने इन्दौर से हिन्दी "शिक्षण पत्रिका" निकाली, जो सन् 1934 से 1956 तक निकलती रही गिजुभाई ने कितने साथी जोड़े? कितनों को अपनी ही तरह पागल बनाया? गिनती कौन करे? कैसे करे?

महाराष्ट्र के संत तुकाराम का एक पद है:

"आम्ही बिगड़लो, तुम्ही बिगड़ावे"।

दुनिया की निगाह में मैं तो बिगड़ ही चुका हूं। आपको भी बिगाड़ करके छोड़ूंगा। जिसको ईश्वर-प्राप्ति की धुन लग जाती है, उसको दुनियादारी की बातों में कोई रुचि नहीं रहती। वह तो इनमें मूर्खता देखता है, और चाहता है कि दूसरों को भी वह अपने इस उल्टे ज्ञान की दीक्षा देता रहे।

बस इसी प्रकार का एक "भूत" गिजुभाई पर भी सवार हो गया था। वे कहा करते थे, "मैंने बाल-शिक्षा को समझा है। मैं आपको भी बाल-शिक्षा का प्रचारक बनाकर छोड़ूंगा।" परिणाम क्या निकला? भावनगर की तखोश्वर टेकरी से बाल शिक्षा की गंगोत्री बह निकली, और वहीं से बहने लगी, बाल-जीवन की अमृत धारा।

जिन पर ऐसा भूत सवार हो जाता है, जिनको अवसर मिलता है कि वे दूसरों को भी ऐसे ध्येय पर चलने और दौड़ने को राजी कर लेते हैं, वे ही सच्चे अर्थों में जीने वाले माने जाते हैं।

... शेष पृष्ठ 26 पर

सवालीराम

हिचकी क्यों आती है ?

हिचकी क्यों आती है यह समझने के लिए यह जान लेना जरूरी है कि हमारे फेफड़ों में हवा कैसे आती-जाती है।

हमारे सीने (वक्ष) में खाली जगह होती है जिसमें फेफड़े और हृदय स्थित होते हैं। इसी प्रकार हमारे पेट (उदर) की खाली जगह में आमाशय, यकृत, छोटी आंत, बड़ी आंत, वृक्क, आदि शेष अंग स्थित होते हैं। उदर और वक्ष के बीच में एक मांसल पर्दा होता है जिसे मध्यपाट कहते हैं। वक्ष में पसलियों से मिलकर पिंजड़े के समान एक रचना बनती है जो हृदय और फेफड़ों की सुरक्षा करती है। पसलियां और मध्यपाट लगातार ऊपर-नीचे होते रहते हैं। जब मध्यपाट नीचे दबता है और पसलियां ऊपर उठती हैं (चित्र-1) तब वक्ष के भीतर के स्थान का आयतन बढ़ जाता है और लचीले होने के कारण फेफड़े फूल जाते हैं। जब फेफड़े फूलते हैं तो हमारी नाक और श्वासनली में होती हुई बाहरी हवा आकर फेफड़ों में भर जाती है। जब मध्यपाट ऊपर उठता

चित्र-1

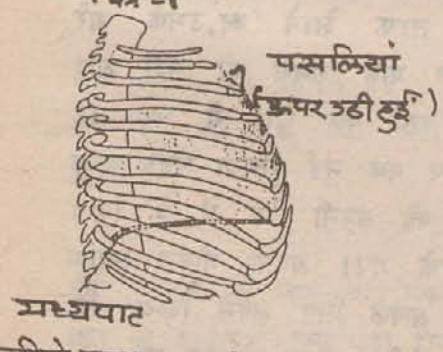

चित्र-2

है और पसलियां नीचे दबती हैं तब इसके ठीक उलटी क्रिया होती है (चित्र-2) । फेफड़ों पर दबाव बढ़ जाता है और उनमें भरी हुई हवा श्वासनली और नाक में होती हुई बाहर निकल जाती है।

हमारी आंख की पलक दिन में कई बार अपने आप ऊपर-नीचे होती रहती है, लेकिन कभी-कभी जब इसकी पेशियां फड़कने लगती हैं तब इसके हिलने पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं रह जाता और यह जल्दी-जल्दी ऊपर-नीचे होने लगती है। कई बार इस प्रकार की पेशियों के फड़कने की क्रिया हम अन्य अंगों में जैसे-भुजा या पांव की पेशियों में महसूस करते हैं। ठीक इसी प्रकार जब मध्यपाट की पेशियां फड़कने लगती हैं तब वह अनियंत्रित ढंग से ऊपर-नीचे होने लगता है। इसी को हिचकी कहते हैं।

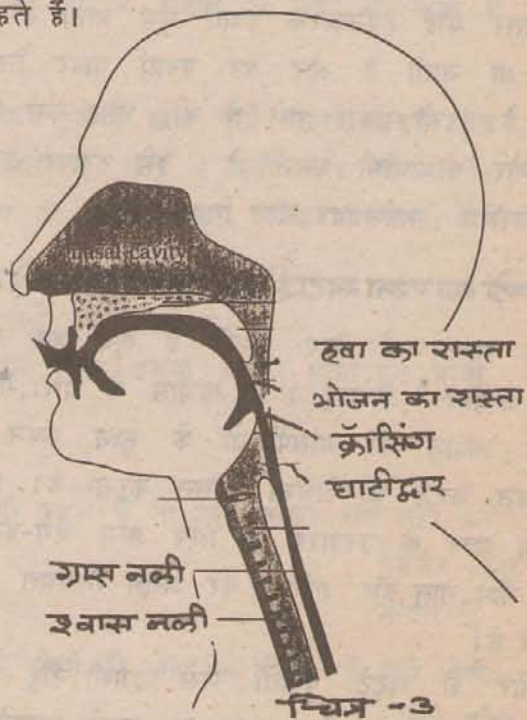

चित्र -3

अब रहा सवाल कि हिचकी लगने पर मुंह से आवाज क्यों निकलती है? हम जो भोजन मुंह से लेते हैं वह मुंह के पीछे की ओर जाकर ग्रसनी ग्रासनली में होता हुआ आमाशय में पहुंचता है। इसी प्रकार नाक से ली हुई हवा मुंह के पिछले भाग में होती हुई श्वासनली में पहुंचती है। मुंह के पिछले भाग में हवा के और भोजन के रास्तों की क्रॉसिंग होती है। इस क्रॉसिंग पर वह छेद होता है जिसमें होकर हवा श्वासनली में जाती है। इस छेद को घाटीद्वार कहते हैं (चित्र-3) ।

हिचकी आने पर यह छेद झटके के साथ खुलता और बंद होता है और इससे झटके से निकलने वाली हवा के कारण सीटी के समान आवाज़ पैदा होती है। यही हिचकी की आवाज़ है।

इस विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि शरीर की सामान्य क्रिया में गड़बड़ी पैदा होना ही हिचकी का कारण है। कई अन्य क्रियाएं शरीर के बचाव के लिए होती हैं। उदाहरण के लिए जब हमारे नाक के भीतर कोई हानिकारक पदार्थ घुस जाता है तब छींक आ जाती है और वह पदार्थ बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार गले में कोई चीज फंस जाने पर जोर की खांसी चलती है इसे ठसका लगना भी कहते हैं , ताकि वह चीज निकल जाए।

गायकों का गला खटाई खाने से क्यों खराब हो जाता है?

बढ़िया गायन के लिए जरूरी है खूब दम होना और अभ्यास (रियाज़) । अभ्यास के द्वारा,गायक अपनी आवाज़ की मांसपेशियों के सूक्ष्म कंपन को नियंत्रित करने की क्षमता हासिल करता है। इसके अलावा शब्द के उच्चारण के लिए अन्य अंग-प्रत्यंगों जैसे जीभ,तालू,होंट आदि पर अच्छा नियंत्रण होना जरूरी है।

आमतौर से खट्टे पदार्थों जैसे इमली,नींबू आदि में टार्टरिक या साइट्रिक अम्ल या उनके लवणों की वजह से खटाई होती है। इनको खाने से जीभ की स्वाद ग्रंथियां उत्तेजित हो जाती हैं और मुंह में जब तक खटाई हो वह लार ग्रंथियों से काफी मात्रा में लार बहाती है।

आमाशय में रासायनिक क्रिया के द्वारा अम्ल की तीव्रता तो कम हो जाती है। इससे शरीर में क्षार की मात्रा में तुलनात्मक वृद्धि हो सकती है। यूं तो खटाई के अम्ल (टार्टरिक अम्ल) का लवण,आमाशय या आंतों से बहुत कम मात्रा में प्रविष्ट होता है,इससे कब्ज की हालत में सुधार होने की संभावना होती है।

अतः खटाई से ऐसा कोई शारीरिक परिवर्तन नहीं होता,जिससे स्वर तंत्री स्वर यंत्र या दूसरे अंग-प्रत्यंगों पर ऐसा प्रभाव पड़े जिससे गला बिगड़े।

हां, अगर किसी की खटाई के प्रति अति संवेदनशीलता (हाइपरसेंसिटीविटी) हो,जो कि बहुत ही कम लोगों के साथ होता है तो खटाई खाने पर गले का भारी होना,खांसी,सांस में रूकावट आदि तकलीफ हो सकती है।

पृष्ठ 24 से

यदि गिजुभाई से हमको कुछ सीखना है,तो यही सीखना है। अपने बच्चों को कर्तव्यवान बनाने में हम उनकी मदद करेंगे। यदि उनको ऐसा कोई ध्येय प्राप्त हो जाए,तो उनके मन में, न तो धन की, न नौकरी की, न मारुति की,न राष्ट्रपति,राज्यपाल,अथवा प्रधानमंत्री बनने की कोई भूख जाग सकेगी।

गुजरात के भक्त कवि नरसी मेहता ने कहा है कि ऐसे निष्ठावान व्यक्ति के जीवन में"अष्ट महासिद्धि आंगणिए ऊं श्री" यानी आठों महासिद्धियां उसके आंगन में आ खड़ी होती हैं। ऐसे थे हमारे गिजुभाई। उनके पास तो सिद्धियां चाहे आठ आएं,या आठ हजार आएं,उनकी तरफ देखने का,उनके बारे में सोचने का,उनके पास समय ही नहीं था। गिजुभाई दिन-रात इसी एक धुन में लगे रहे कि वे बच्चों के लिए एक नई दुनिया खड़ी करके जाएं। चौपन साल की अपनी उम्र में वे 100 सालों का काम करके गए। अपना जीवन सार्थक करके गए। हमारे आपके लिए अपने दिव्य और भव्य जीवन की एक ऊंची विरासत छोड़कर गए।

- प्रस्तुति

काशिनाथ त्रिवेदी

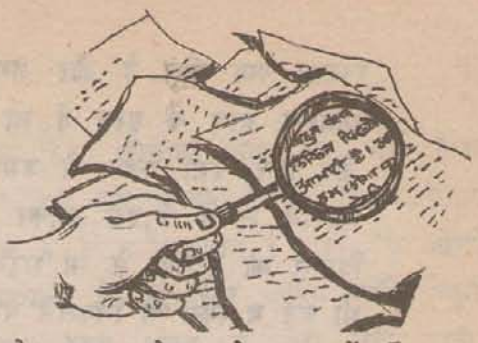

खत सवालीराम के

विगत कई वर्षों से सवालीराम के नाम खत आते रहे हैं। एक अकेला खत तो अपने आप में विशिष्ट होता ही है। लेकिन इस तरह की जब ढेर सारी चिट्ठियां आती हैं और आती ही रहती हैं तब उनमें लिखी बातें खुद-ब-खुद खास हो उठती हैं।

ऐसे ही कुछ खत हम हू बहू प्रकाशित कर रहे हैं। आप देखेंगे कि जहां कुछ पत्रों में बच्चों के विज्ञान विषय और उनके प्रयोगों से संबंधित प्रश्न हैं तो कुछ में समाज से जुड़ी समस्याओं के प्रश्न भी।

इन सब बातों को पढ़कर साफ महसूस होता है कि बच्चे काफी सारी बातें जानते,सोचते और समझते हैं साथ ही अपने आसपास होने वाली चीजों के बारे में पहले से कहीं ज्यादा चौकस हैं। उनके सवालों को यदि सहानुभूति और रुचि से सुना जाए तो और भी कई रोचक और नई बातें और सवालों के साथ-साथ सामने आती हैं।

तभी तो वे अपने दोस्त सवाली राम से पूछते रहते हैं कि फलां क्या है,क्यों है।
अब आप भी पढ़िए ये सवाल और ये भी सोचिए कि क्या आखिर इतना आसान होगा,इन बच्चों को ये बताना कि फलां क्या है,क्यों है।

विज्ञान की सर्वोत्तम देन क्या है?

कोमल सिंह विश्वकर्मा
उमरधा

लोग जनेऊ क्यों पहनते हैं?
स्त्री के दाढ़ी-मूंछ क्यों नहीं होती,आदमी के क्यों होती हैं?

प्रशांत दीक्षित,
सिवनी मालवा

ओले गिरने से क्या-क्या नुकसान होता है? तथा ओले का आकार कितना बड़ा होता है?

ओले गिरने से ज्यादाकर फसलों को नुकसान होता है तथा घर के कबेलू फूट जाते हैं। ओले का आकार कभी नींबू बराबर तो कभी चने बराबर होता है।

चंपालाल

पक्षी उड़ते हैं तो उन्हें चक्कर क्यों नहीं आते?

प्रेमचंद पंवार
मल्हारगढ़

सब लोगों की बुद्धि एक जैसी क्यों नहीं होती?

राजेन्द्र पटैल
चांदोन

एक गिलास में कागज डालकर उसे जला दो,दूसरा गिलास जल्दी से इसके ऊपर पलटकर रख दो,कागज जलना बंद होगा तो गिलास आपस में चिपकते हैं। ऐसा क्यों होता है।

नरेन्द्र कुमार सोनी,
तवा कालोनी,सेमरी हरचंद

मेरी पढ़ाई अच्छी चल रही है, मुझें यह दो सालों में बाल वैज्ञानिक पुस्तक बहुत पसन्द आयी। मैं चकमक दोस्त में अपना नाम भेजना चाहता हूं।

श्रीकान्त

विज्ञान क्या चीज है और अगर आप विज्ञान के प्रयोगों की जगह पर यदि जनरल नालेज व सामान्य ज्ञान के प्रश्न दें तो हम विद्यार्थी के लिए वह विज्ञान विषय कितना रूचिकर होगा और फिर इसी वजह से हमारा इसमें ध्यान भी अधिक लगेगा। इस विज्ञान को देखकर हम घबराने लगते हैं,इसे पढ़कर हम बोर हो जाते हैं,इसलिए हमारा आपसे अनुरोध है कि आप विज्ञान को प्रयोगों से ना भरकर ऐसे रूचिकर प्रश्न लिखें जिससे हम विद्यार्थी का जनरल नालेज भी बढ़े व स्कूल से निकलने पर हम विद्यार्थियों के जीवन के लिए सार्थक सिद्ध हो।

आप हमारी समस्या का शीघ्र समाधान करने की कृपा करें।

-महेन्द्र कुमार,संजय कुमार,
विष्णुपुरी कालोनी,हरदा

अंकलजी आपके पास जब भौतिक तुला बिगड़ जाए तो इस यंत्र का उपयोग कर सकते हो पर इसे पहले बना लें तो और अच्छा। क्या पता कब भौतिक तुला बिगड़ जाए। तो पहले आप एक कांच की नली 18-20 से·मी· लम्बी लगभग 5 से·मी· की दूरी पर गर्म करके 90° का कोण बनाते हुए मोड़ दो और फिर कार्क डिब्बे के साइड कार्क के बराबर-बराबर छेद करके नली सहित कार्क को इस छेद में कस दो। इसमें लाख या मोम को पिघला कर लगा दो ताकि जोड़ वायुरूद्ध हो जाए। डिब्बों को दो-तिहाई पानी भरकर ऊपर की चादर पर रबर रखकर अच्छी तरह कस दो। कसने से पहले डिब्बे में दो-तिहाई पानी भर लो। स्थिर अवस्था में पानी की सतह को चिन्हित करने के लिए रबर की चादर पर दो ग्राम बांट रखो। नली में पानी चढ़ेगा। वहां पर निशान लगा दो इस प्रकार आप अपनी पानी की तुला बना लें ।

-कैलाश कुमार,
कक्षा-9 वीं,राधास्वामी शाला,
टिमरनी

बाल वैज्ञानिक पुस्तक के शुरू में ही लिखा है कि लोग कहते हैं कि भारत के गांव और कस्बों के स्कूलों में विज्ञान के प्रयोग करना तो संभव नहीं है। हमारे अनुभवों से लोगों का यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि हमने अभी तक जो प्रयोग किए हैं उसमें अधिकांश चीजें हमने अपने हाथों से बनायी है। जिसमें कोई उपकरण या महंगी चीजों की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि बाल विज्ञान में उनके बनाने के तरीके बहुत सरल और सस्ते हैं। जैसे- हमने छठवीं कक्षा में लेंस बनाया था। उसका कितना सरल और आसान तरीका था। हम इन्हीं अपने छोटे उपकरणों से बड़े-बड़े वैज्ञानिक उपकरणों की तुलना कर सकते हैं। श्रीकांत

... शेष-पृष्ठ 33 पर

शिक्षा : राजनीति और समाज का ढांचा

यह लेख गांवों में शिक्षा फैलाने के प्रयास में आई समस्याओं की जांच करता है। स्वतंत्रता के बाद देश में नई तरह के सामाजिक और राजनैतिक विकास हुए। उन के बीच शिक्षा की सुविधाओं का बहुत विस्तार हुआ। शिक्षा सुविधा के विस्तार का क्या अर्थ रहा है,क्या महत्व रहा है- इस सवाल की खोजबीन प्रस्तुत लेख में पश्चिम बंगाल के उदाहरण से की गई है। इस लेख में उन मूलभूत कारणों को प्रकाश में लाने की कोशिश की गई है जिनके कारण प्राथमिक शालाओं में ही समाज के हर वर्ग के बच्चे बराबरी से भाग नहीं ले पाए हैं। क्या इस स्थिति का कोई विकल्प भी है? इस प्रश्न के कुछ उत्तर इस लेख में टटोले गए हैं।

शिक्षा की सुविधा का विस्तार :

पश्चिम बंगाल :

प्रमुख रूप से एक ग्रामीण प्रदेश है जिसकी 74 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।

1950-51 : में पश्चिम बंगाल में सिर्फ एक विश्वविद्यालय था, 90 महाविद्यालय थे,1107 उच्चतर माध्यमिक शालाएं थीं, 1261 माध्यमिक व 14,783 प्राथमिक शालाएं थीं। तब कुल मिलाकर लगभग 2·1 करोड़ छात्र थे और 71 हजार शिक्षक थे।

1980-81 : में पश्चिम बंगाल में 8 विश्वविद्यालय थे, 281 महाविद्यालय, 5067 उ·मा·शाला, 3,157 माध्यमिक व 50,000 प्राथमिक शालाएं। इनमें से लगभग 41,000 प्राथमिक शालाएं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित थीं। पश्चिम बंगाल के लगभग हर गांव में प्राथमिक शाला है। जबकि 1950-51 में पश्चिम बंगाल की सरकार शिक्षा पर अपने बजट का 9·3 प्रतिशत खर्च करती थी। 1980-81 में बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जा रहा था। अब यह हिसाब है कि पश्चिम बंगाल में कुल करीब 8·6 करोड़ छात्र हैं। हां, ये आंकड़े हमें कुछ सावधानी से ही देखने चाहिए क्योंकि स्कूलों में दर्ज संख्या बहुत ध्यान से रखी नहीं जाती? यही नहीं,विशेष रूप से गांवों के स्कूलों में प्रधान अध्यापक दर्ज संख्या बढ़ा-चढ़ा कर पेश करते हैं। फिर भी इस में कोई शक नहीं कि पश्चिम बंगाल में कुल छात्रों की संख्या पिछले 30 सालों में खूब बढ़ी है।

अब देखना यह है कि शिक्षा की सुविधा में हुए इस प्रभावशाली विस्तार का लाभ समाज के विभिन्न वर्ग के लोग कैसे उठा पा रहे हैं।

शिक्षा की सुविधा से लाभ पाने वाले :

1975 में पश्चिम बंगाल के बांकुरा और मालदा जिलों के 4 गांवों में एक विस्तृत सर्वेक्षण हुआ। इस सर्वेक्षण से मालूम हुआ कि यद्यपि सरकारी आंकड़ों के अनुसार 6 से 11 वर्ष की उम्र वाले 71 प्रतिशत बच्चे स्कूल में दर्ज थे,असलियत में सिर्फ 50 प्रतिशत बच्चे ही स्कूल के रजिस्टर पर दर्ज थे।

सर्वेक्षण के आंकड़े बड़ी रोचक बातें सामने लाए। गांव के जोतदारों (बड़े किसान) के जितने बच्चे 6 से 11 वर्ष की उम्र के थे,सब स्कूल वाले थे। जबकि खेतिहर मजदूरों के (6 से 11 वर्ष की उम्र वाले) बच्चों में से 21 प्रतिशत ही स्कूल जाते थे। ये पता चला कि खेतिहर मजदूरों के बच्चे

कक्षा 2 तक आते-आते स्कूल छोड़ने लगते हैं और गरीब किसानों के बच्चे कक्षा 3 तक आते-आते स्कूल छोड़ने लगते हैं।

शिक्षक समिति के सदस्य आमतौर पर संपन्न किसान वर्ग के लोग थे।

यह भी मालूम पड़ा कि 6 से 16 वर्ष की उम्र के जिन बच्चों का नाम स्कूल में दर्ज नहीं था, उनमें से 25 प्रतिशत मजदूरी के कामों में लगे हुए थे। शाला के शिक्षक समिति के सदस्य आमतौर पर जमींदार व संपन्न किसान वर्ग के लोग थे।

इस तरह के तथ्यों को उजागर करने वाला यह एक अकेला सर्वेक्षण नहीं है। कई अन्य सर्वेक्षणों का भी यही निष्कर्ष रहा है कि "मौजूदा स्कूल-व्यवस्था गरीब तबके के बच्चों की जरूरतों को न के बराबर पूरी कर पाती है।" ये सर्वेक्षण बारम्बार इस तथ्य के ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि कैसे शिक्षा की सुविधा के विस्तार का लाभ समाज के ऊंचे तबके के लोगों के बीच सिमट कर रह गया है।

ऊंचे तबके के लोगों को शिक्षा के विस्तार के एक नहीं कई लाभ हुए हैं। शिक्षा-सुविधा के विस्तार का लाभ सिर्फ ऊंचे तबके के बच्चों ने ही नहीं प्राप्त किया। बल्कि शिक्षकों के रूप में इन्हीं तबके के लोगों को अधिकांश नौकरियां मिलीं। प्रदेश सरकार ने शिक्षा पर जो खर्च बढ़ाया. और खर्च मुख्य रूप से शिक्षकों को वेतन देने में होता है, उसका प्रमुख हिस्सा मात्र ऊंचे तबके के लोगों की जेबों में ही समाया है।

पश्चिम बंगाल में प्राथमिक शाला के शिक्षक 1950-51 में 43,000 थे, अब 1980 में उनकी संख्या 14,7000 हो गई है। जमींदार और संपन्न किसान परिवारों के पढ़े-लिखे सदस्य भारी संख्या में "टीचिंग लाईन" में आए। "टीचिंग" उनका एक "साइड" धन्धा बन गया है। इस धन्धे से लाभ ही लाभ है। महीने दर महीने बंधी बंधाई नगद आमदनी होती है जिसका उपयोग खेती के सुधार में लागत लगाने के लिए किया जाता है। इस नकद आमदनी को पाने के लिए कोई विशेष प्रयत्न भी करना नहीं पड़ता और एक बार नौकरी पक्की हुई तो फिर क्या चिन्ता और क्या खतरा।

स्वतंत्रता के बाद सरकार ने कस्बों व छोटे नगरों में बहुत से महाविद्यालय कालेज खोले हैं। इनकी मांग व जरूरत गांव के "अच्छे परिवारों" के युवक-युवतियों की तरफ से उपजी। आमतौर पर ये कालेज घटिया व दूसरे दर्जे के संस्थान हैं, जो और कुछ नहीं बस मास्टर व क्लर्क या बाबू बनने की ट्रेनिंग भर दे पाते हैं। जिस तरह प्राथमिक शिक्षा का कार्यक्रम देश में चल रहा है उसे देखते हुए तो यह भी विचार मन में उठता है कि इसका मकसद बाकई क्या था? बच्चों को शिक्षा देना या छोटे कस्बों के कालेजों से पढ़ कर निकल रहे ग्रामीण समाज के उच्च व मध्यम वर्ग युवाओं को नौकरियों का अवसर देना?

असमानता के कारणों की जांच :

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में एक तरफ सरकार और दूसरी तरफ साधारण जनता के बीच की जगह उच्च वर्ग से आए शिक्षकों और शाला समिति के सदस्यों ने पूरी की है।

मजदूर वर्ग के बच्चे वर्तमान शिक्षा सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं उसका एक कारण यह भी हो सकता है। यह तो जाहिर है कि उच्च वर्ग से आए शिक्षकों का मजदूर वर्ग के बच्चों के प्रति जो नजरिया होगा वो बहुत नकारात्मक होगा और किसी भी मायने में उन बच्चों को प्रोत्साहन देने वाला, प्रेरणा देने वाला नहीं होगा। गांव के गरीब

लोगों के विचार में गांव के प्रमुख लोग प्रशिक्षक व सरकारी अधिकारी उनके बच्चों को शिक्षा देने के साफ-साफ खिलाफ हैं अन्यथा इस विषय में उदासीन व अनमने हैं।

इस बात को हमने सर्वेक्षण के दौरान कई सवाल पूछ कर परखना चाहा। हमारा लोगों से सवाल था-

क्या आप चाहते हैं कि 14 वर्ष की उम्र तक के बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षा मिलनी चाहिए?"

हमें जो जवाब मिले उनका आकलन इस प्रकार है-

उच्च वर्ग के लोगों के सब बच्चे शत-प्रतिशत स्कूल में दर्ज हैं। फिर इस सवाल के प्रति उनका रूख अजीब था। वे सब बच्चों के आवश्यक रूप से शिक्षित होने के विरूद्ध थे। यद्यपि इस सवाल से उन्हें कोई सीधा फर्क नहीं पड़ रहा था क्योंकि उनके तो सब बच्चों को शिक्षा मिल ही रही थी। फिर वे सब बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षित करने के स्पष्ट खिलाफ क्यों थे?

उनके रूख का कारण समझना शायद बहुत मुश्किल नहीं है। अगर गांव के सब बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षा दी जाए तो जमींदारों के लिए मजदूरी कौन करेगा? इस बात का उन्हें डर था। छोटे बच्चों को मजदूरी पर लगाना उन्हें आसान लगता था, पैसे भी कम देने पड़ते थे। बड़े लोगों को मजदूरी पर लगाएं तो ज्यादा मजदूरी देनी पड़ेगी। उन्हें इस बात का भी डर था कि अगर मजदूर लोग शिक्षित हो गए तो मजदूरों से उनके संबंध सब गड़बड़ा जाएंगे। उच्च वर्ग के किसानों व जमींदारों को ऐसा लगा कि अगर मजदूर लोग शिक्षित होंगे तो वे उनकी हुकूमत आसानी से नहीं मानेंगे और वे अपने हक मांगने में ज्यादा हिम्मत से काम लेंगे।

जब उनसे यह पूछा गया कि अगर गांव के सब बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षित किया जाए तो क्या इससे उन्हें असुविधा व कठिनाई होगी? 90 प्रतिशत संपन्न किसानों ने कहा-होगी। 80 प्रतिशत जोतदारों ने कहा-हां होगी।

संपन्न वर्ग के लोगों के दृष्टिकोण का सर्वेक्षण करने के अलावा हमने मजदूर वर्ग के लोगों के दृष्टिकोण की भी जांच की। हमने पाया कि मजदूर वर्ग के लोग भी इस बात के विशेष पक्षा में नहीं हैं कि गांव के सब बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षित किया जाए। 18 प्रतिशत मजदूरों ने और 17 प्रतिशत छोटे व गरीब किसानों ने ही इस बात का पक्ष लिया। बाकी मजदूर व छोटे किसान इस बात के विरूद्ध थे या उनका कोई स्पष्ट मत नहीं था। मजदूरों व गरीब किसानों में से भी 66 प्रतिशत लोगों को लगा कि अगर सब बच्चों को आवश्यक रूप से शिक्षित किया जाता है तो इससे उन्हें असुविधा व कठिनाई होगी।

क्या कारण हैं इस दृष्टिकोण के?

1. गरीबी
2. शिक्षा में रूचि नहीं है-क्या करेंगे पढ़ के?
3. बच्चों की घर पर जरूरत है-घर का काम करने के लिए, या मजदूरी कर के पैसे कमाने के लिए।

गरीब तबके के सिर्फ 8 प्रतिशत लोगों का कहना था कि उनके बच्चे स्कूल जाने के बजाए खेलते फिरते रहते हैं। बाकी 92 प्रतिशत का कहना था कि उनके बच्चों की घर और बाहर काम पर जरूरत होती है।

सर्वेक्षण से एक बात साफ उभर कर आ रही थी कि जन-साधारण को शिक्षित करने की राह में दो प्रमुख बाधाएं हैं-

बच्चों का मजूदरी करना और शिक्षा के कारण मालिक-मजदूर रिश्तों के बिगड़ने का डर। जबकि गरीब तबके के लोगों को तो यह सोचना चाहिए कि अगर वे बच्चों को मजदूरी पर न भेजकर स्कूल भेजेंगे, तो इस से बड़ी उम्र के लोगों को ज्यादा काम मिलेगा और उन्हें पैसा भी ज्यादा काम मिलेगा और उन्हें पैसा भी ज्यादा मिलेगा। पर हर मजदूर परिवार अपनी ही जरूरतों और कमियों में पिस कर ऐसा कदम नहीं उठा पाता और अपने परिवार की आमदनी बढ़ाने के लिए बच्चों को मजदूरी पर भेजता है। इस कठिनाई और सुविधा के अलावा मजदूर परिवार आमतौर पर शिक्षा के लाभ के प्रति विश्वास नहीं रखता और उसे अपने मालिक की नाराजगी का भी भय रहता है।

पौरोमेश आचार्य ने पश्चिम बंगाल के चार गांव के सर्वेक्षण के आधार पर इस लिखे में अपना एक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। विश्लेषण का मुद्दा था-शिक्षा की सुविधा के विस्तार का लाभ किस वर्ग के लोगों को मिला है? अगर मजदूर वर्ग को इस लाभ का लेशमात्र अंश भी नहीं मिला तो इसके क्या कारण हो सकते हैं?
आचार्य ने कई आंकड़ों के आधार पर अपनी बात रखी है।

-•-

क्या आपको पौरोमेश आचार्य का विश्लेषण तार्किक और वास्तविक लगा?

-•-

अगर आप अपने आसपास के गांवों का सर्वेक्षण करें, तो क्या वैसे ही परिणाम सामने आएंगे जो इस लेख में प्रस्तुत किए गए हैं?

-•-

क्या आपके क्षेत्र के संपन्न किसान व भूमिपति लोग और मजदूर व गरीब किसान लोग शिक्षा के प्रति वैसे ही रूख रखते हैं जैसा पश्चिम बंगाल के गांवों के लोगों के उदाहरण में झलक रहा है?

पौरोमेश आचार्य ने शिक्षा के विस्तार की समस्या को लेकर अपनी तरफ से एक विकल्प भी पेश किया है। उसे हम संक्षिप्त में यहां बता रहे हैं। आचार्य का कहना है कि गरीब व मेहनतकश तबके के लोग तब तक शिक्षा में भागीदारी नहीं करेंगे जब तक शिक्षा उनकी जरूरतों की पूर्ति न करे। वर्तमान शिक्षा की विषयवस्तु पूर्ण रूप से बौद्धिक है और अपने में इंग्लैण्ड के पब्लिक स्कूल (जो संभ्रात वर्ग के बच्चों के लिए हैं) पर आधारित हैं, अंग्रेजियत लिए हुए हैं। उसमें श्रम, मेहनत और उत्पादन करने का कोई स्थान नहीं है। वर्तमान शिक्षा बाबूगिरी की शिक्षा है, मेहनतकश की शिक्षा नहीं है। अतः गांधीजी की "नई तालीम" जैसी शिक्षा प्रणाली लागू होनी चाहिए जिससे बच्चे स्कूल में कुछ चीज बनाए-उगाएं और उसे बेच कर कुछ कमा भी लें। इससे पहला फायदा तो यह होगा कि बच्चों को आमदनी जुटाने के काम से हटा कर शिक्षा दिलवाने का कष्ट परिवार को नहीं भोगना पड़ेगा। दूसरा फायदा यह होगा कि मेहनतकश के बच्चे अपने संस्कारों के अनुरूप शिक्षा ग्रहण करेंगे।

आचार्य का कहना है कि करो और सीखो पद्धति के अनुसार शिक्षा का ढांचा बनाने की कोशिश किसी सरकार ने गंभीरता और निष्ठा से नहीं की। स्वतंत्रता के बाद भी शिक्षा की विषय वस्तु में हाथ से काम करने को तुच्छ समझा गया। इस तरह की शिक्षा उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों के हितों से मेल खाती है क्योंकि इन तबके के लोगों को तो बाबू या अफसर ही बनना है- हाथ से मेहनत नहीं करनी है। और ये लोग कभी नहीं चाहेंगे कि देश में शिक्षा का ढांचा किसी और किस्म का हो। देश की बागडोर आज ऊंचे वर्ग के लोगों के हाथ में ही है और वे शिक्षा के ढांचे में ऐसा कोई परिवर्तन पूरी तरह नहीं होने देंगे जिससे शिक्षा का हित मेहनतकश लोगों को मिले। यह बदलाव तभी आ पाएगा जब देश की बागडोर मेहनतकश लोगों के हाथ में आएगी। जब तक यह नहीं होता तब तक

गरीब व मेहनतकश्या लोगों तक शिक्षा पहुंचाने के सब छुटपुट प्रयास निष्फल रहेंगे।

आचार्य द्वारा प्रस्तुत समाधान आपने पढ़ा। क्या आपके क्षेत्र में गरीब बच्चों को शिक्षित करने के विशेष प्रयास हुए हैं? जैसे मुफत भोजन, कपड़ा-किताब दिया जाना, कमाओ-सीखो योजना आदि? इन कार्यक्रमों का नतीजा आपके विचार में क्या रहा है?

गरीब तबके के लोगों को शिक्षित करने की समस्या का क्या विकल्प आपके मन में उठता है?

—×—

खत सवालीराम के

....पृष्ठ 28 से

दीगर हाल यह है कि मैं यहां अच्छी तरह से हूं और खुदा भगवान से आपकी कुशलता चाहता हूं। आगे समाचार यह है कि मैंने आपको खत डाला लेकिन आपने अभी तक जवाब नहीं दिया शायद आप मुझसे नाराज़ हैं या प्रश्न के उत्तर खोजने में शायद देर लग गई होगी लेकिन मैंने आपको खत लेट डाला था तो तुमने कहा था कि मुझे भूल गए हो और अब आप खत लेट डाल रहे हो। मैं क्या लिखूं आप खुद समझदार हैं, शायद मुझसे गलती हो गई होगी इसलिए आपसे माफी चाहता हूं। आपसे गुजारिश करता हूं कि आप खत का जवाब जल्द देवें।

अगर आपने खत का जवाब नहीं दिया तो शायद मैं समझूंगा कि तुम मुझे भूल गए हो लेकिन भाई साहब ऐसा न करना और खत का जवाब जल्द देना, प्रश्न आपके पास हैं। आपके खत के इंतजार में

आपका छोटा भाई,

-रियाज खान,
पोस्ट-मुकाम खापरखेड़ा

मेरा सवाल है कि अगर किसी गरीब बाप का बेटा पढ़-लिख जाए और उसकी उम्मीद नौकरी करने की है और वो जहां भी गया वहां रिसवत मांगी गई। उसके पास दो वक्त की रोटी नहीं है, वो क्या दस हजार रूपए दे सकता है। मुझे इसका जवाब देने की कृपा करना। अगर आपको जवाब नहीं देना है तो साफ इन्कार कर देना। मुझसे कोई गल्ती हुई हो तो माफी चाहता हूं।
अब सिर्फ आपके जवाब का इन्तजार है।

आपका सीताराम,
अरलावदा

शेष पृष्ठ 37 पर

सफदर के मायने

सफदर हाशमी नहीं रहा,यह बात अखबार में पढ़ी। यह भी पढ़ा कि कुछ मदांध लोगों ने लाठी से पीट-पीट कर उन्हें खत्म कर दिया। पर क्या यह सही है? सफदर एक जिस्म और जान का ही नाम नहीं है वह एक प्रयास का प्रतीक है। और वह प्रतीक हम सब में जिन्दा है।

सफदर का मैं दोस्त नहीं था। वह और मैं एक ही बार मिले लेकिन उस एक बार में ही ऐसा लगा जैसे उसे मैं बहुत पहले से जानता हूं। मैं यही नहीं जानता था कि उसका जन्म कब हुआ,कहां हुआ लेकिन यह जरूर अहसास था कि वह क्या सोचता है और क्या करना चाहता है। उसके जिन्दा चेहरे को देखकर जीने का और जूझने का जोश मिलता था। वह शान्त और हंसमुख बातचीत करता था और उसी में बता देता कि उसका रास्ता पक्का है और वह कई अन्य रास्तों से फर्क है। उसकी असहमति में व्यक्ति का नकारना न था। कोई रोश, कोई गुस्सा नहीं जो किसी व्यक्ति पर केन्द्रित हो। पर कई व्यक्तियों से उसका कोई नाता नहीं हो सकता यह भी उसे मालूम था। किन लोगों के साथ किस तरह से उसका काम,उसकी जिन्दगी जुड़ी है यह उसे मालूम था और यह भी मालूम था कि जो लड़ाई वह लड़ रहा है वह तत्काल हल होने वाली लड़ाई नहीं है।

सफदर ने मुझे कई कहानियां सुनाई,उन इन्सानों की जिनका वह हमदर्द था। जिनकी पीड़ा को,मजबूरी को,समझता था महसूस करता था। उन कहानियों को सुनाने में कहीं भी भावुकता नहीं थी,एक वर्णन था यर्थाथ का। ऐसा यर्थाथ जिसे भावतुकता से या ढिंढोरा पीट कर बदला नहीं जा सकता। ऐसा लगा मुझे जैसे वह यह कह रहा हो-

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए"

सफदर नहीं रहा यह जितना झूठ है उतना सच भी है। उस व्यक्ति के जैसी क्षमता - समझने की, लिखने की और टोली के सभी लोगों को अपने साथ लेकर चलने की,आसानी से नहीं आती। उस जैसा व्यक्ति आसानी से नहीं मिलता और न ही उस जैसा लेखक कार्यकर्त्ता। यह घटना क्यों हुई,कैसे हुई यह समझने से व्यक्तिगत पीड़ा तो शायद कम हो जाए लेकिन हम सब की हानि का अहसास भी होगा। और इस हानि की पूर्ति का एक ही तरीका है कि हम सब सफदर के काम को समझें,उसकी लड़ाई को,उस पर हुए हमले के कारण समझें और उसके काम को आगे बढ़ाएं।

सफदर की पत्नी ने,सफदर ने,सफदर के साथियों ने यही माना है। यह उनका नुकसान नहीं सबका नुकसान है और वह जी-जान से जुट गए हैं इस लड़ाई में। यही सफदर की जीत है कि उसके साथी असहाय बन कर रोए नहीं। अपनी पीड़ा को आंसुओं और विलाप में नहीं बहाया। उससे एक ताकत बनाई इस लड़ाई को आगे ले जान के लिए। सफदर की और उसके साथियों की लड़ाई हम सब की लड़ाई है।

अगर यह हादसा और इस तरह के हादसे हमें डराएं न,हमें हतोत्साहित न करें और इस तरह के आक्रमणों की निन्दा,अपने हकों,अपने विचारों को कसौटी पर परखने और उनके लिए निडर होकर कार्य करने के लिए प्रेरित करें तो हम सफदर और उस जैसे अन्य लोगों को सही श्रद्धांजलि देंगे।

• हार्डी

साक्षात्कार

"क्या नाटक करना इस मुल्क में जुर्म है?"

नवभारत टाइम्स के श्री मुकुल और उद्भावना के श्री अजय कुमार से जन नाट्यमंच की कलाकार व सफदर हाशमी की पत्नी मलयश्री हाशमी से बातचीत के महत्वपूर्ण अंश

0कविता नागपाल ने हिंदुस्तान टाइम्स में लिखा है कि कहां थे वे लोग जिनके लिए सफदर हाशमी नाटक कर रहा था?

जहां तक सीटू के 7-8 कार्यकर्त्ताओं का सवाल है,वे भी पिटे। उन्हें भी चोटें आईं। मगर जनता जो पहले से ही गुण्डों से आतंकित थी,बहुत डरी हुई थी। साथ में वे लोग पूरी तैयारी के साथ आये थे। मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है,उनके पास बहुत मोटे-मोटे लट्ठ थे,बांस के डंडे नहीं,तेल पिये हुए लट्ठ,जो माने हुए लठैत प्रयोग में लाते हैं,वे थे,लोहे की छड़ें थीं। वहां के लोगों पर भी मार पड़ी थी,साथ में यह सब इतना अचानक हो गया कि सोचने की फर्सत ही न थी। आतंक और दमन का ऐसा वातावरण पैदा हो जाने पर संगठित विरोध की गुंजायश नहीं थी। एकदम खुले रूप में हिंसा पर उतारू 70-80 असामाजिक गुंडों का जनता अकेले विरोध कैसे कर सकती थी जबकि इसका किसी को कोई अंदेशा नहीं था। मानसिक तौर पर भी कोई तैयारी नहीं थी।

सीटू के मुट्ठी भर 7-8 कार्यकर्त्ता किस तरह बचाव करते? आखिरकार सीटू के लोगों ने ही केस दर्ज करवाया है। मैंने तो नहीं करवाया। जो भी केस अब चलाना है,वे ही कर रहे हैं। सीटू एक गरीब संगठन है। मगर फिर भी उसने हमले में मारे गए मजदूर रामबहादुर की बीवी को 50,000रु0 देने का एलान किया है। यह सब असंबंधता तो नहीं दिखता,सीटू की गहरी सहानुभूति दर्शाता है। इसलिए जो लोग सीटू संगठन,और जनता पर यह लांछन लगा रहे हैं कि उन्होंने कुछ नहीं किया,उन्हें पूरी सच्चाई का पता नहीं है।

यह हमें समझना है कि गुंडागर्दी से लड़ना एक दिन का काम नहीं है,ये जो आतंक है,वह एक दिन में जाने वाला नहीं है,इसके लिए हमें लोगों में जागरूकता लानी है,उनमें ताकत पैदा करनी है।

0सफदर की हत्या का जो विरोध हुआ है और हो रहा है,उस बारे में क्या कहेंगी,इस विरोध की संभावनाएं और सीमायें क्या हैं?

इतना व्यापक विरोध हुआ है,हर किस्म का आदमी या तो तारे भेज रहा है,पत्र लिख रहा है,दूरदर्शन तक को चिट्ठियां आई हैं। दिल्ली ही नहीं तमाम जगहों पर प्रदर्शन हुए हैं। आम आदमी,वह कलाकार या बुद्धिजीवी हो या न हो,उसे एक बहुत बड़ा धक्का लगा है कि केवल नाटक करना भी इस मुल्क में संभव नहीं है क्या। इस असंतोष को वह दर्ज करना चाहता है,वे सभी हमारी विचारधारा के हों या न हों। आज देश के ये हालात हो गए हैं कि आप एक नाटक भी नहीं कर सकते,कल आप कहीं खड़े होकर कोई गीत भी नहीं गा सकेंगे।

0हत्या के दो दिन बाद आपने और जनम के कलाकारों ने दोबारा वही नाटक उसी स्थान पर किया,इसके लिए आपने जो शक्ति जुटाई,उसका स्रोत क्या है?

। जनवरी की रात को जब सफदर अस्पताल में थे,मुझे यह मालूम नहीं था कि वे बच पायेंगे या

नहीं,कोशिश जारी थी,फिर भी मैंने उसी दिन अपने साथियों से यही कहा था कि नाटक दोबारा करना जरूरी है। कोई हमारे नाटक को कैसे रोक सकता है। इसके अलावा मैं कर भी क्या सकती थी।

कहीं न कहीं सफदर से जुड़ने का,कहीं न कहीं मेरा अपना 10 वर्ष का नुक्कड़ नाटक करने का अनुभव और कहीं न कहीं मेरे अपने व्यक्तित्व ने भी कोई रोल अदा किया होगा शायद।

मेरा यह मानना है कि एक आम औरत या आम इंसान में बहुत शक्ति होती है,बात उसे पहचानने की है। सफदर की मौत के बाद मैंने कभी अपने आपको अकेला महसूस नहीं किया। मैं हमेशा लोगों के बीच घिरी रही। इसीलिए दोबारा नाटक करना मुझे असाधारण नहीं लगा।

जिन लोगों के घर हमने शरण ली,उनका किसी यूनियन व राजनीति से कोई संबंध नहीं था फिर भी उन्होंने हमें कहा कि वे हम पर कुछ नहीं होने देंगे। कहां से आई उनकी यह शक्ति। वक्त ने जब उन्हें एक चुनौती दी तो उन्होंने उसका मुकाबला किया। यह शक्ति हम सब में होती है।

आप कला संबंधी पहलुओं और राजनीति संबंधी पहलुओं के बीच संतुलन कैसे रखते हैं?

एक विचार धारा को रखते हुए हम कला के पक्ष को नकारते नहीं हैं। हमारे लिए नाटक को समझना, अच्छा नाटक करने के लिए अनिवार्य कौशल को हासिल करना बहुत महत्वपूर्ण है। वर्कशाप करके, अध्ययन करके,नाटकों को देखकर अच्छा नाटक पैदा करना जरूरी है। नाटक और भाषण में फर्क करना पड़ेगा। नाटक में नाटकीयता का होना अत्यंत जरूरी है।

विचारधारा आपके काम पर असर करती है। राजनीति और कला को इसलिए अलग नहीं किया जा सकता है। हम यह कोशिश जरूर करते हैं कि हम सभी लोग इतिहास,अर्थशास्त्र विज्ञान और वर्तमान राजीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करें और चर्चा करें। एक रंगकर्मी के लिए यह सब जानना बहुत जरूरी है। तभी वह एक अच्छा नाटक कर पायेगा।

आपके और अन्य नुक्कड़ नाटक संगठनों में क्या फर्क हैं?

एक तो हम अपने नाटक खुद लिखते हैं। दूसरे हम बड़े व्यवस्थित तरीके से नाटकों की तैयारी करते हैं। और भी कई संगठन करते होंगे। एक अन्य फर्क यह है कि हम बहुत अधिक शो करते हैं। कई लोगों से संपर्क होता है। हमारे पास इस तरह बहुत सुझाव आते हैं जिनसे हमें फायदा होता है। साथ में हम जनवादी आंदोलन की मुख्यधारा से हटकर नाटक नहीं करते हैं। अपनी स्वायतता बनाये रखते हुए भी हम अपने आपको मुख्यतः जनवादी संघर्ष से जोड़ कर रखते हैं।

अन्त में आपने नुक्कड़ नाटक ही क्यों चुना?

1973 से 75 तक हम बड़े नाटक करते थे। रंगशालाओं से बाहर जाकर भी,बस्तियों से खुले स्टेज वगैरह लगाकर भी नाटक करते थे। हमारा मुख्य लक्ष्य यही रहा है कि नाटक को जनता के बीच ले जाया जाये,जनता नाटक-घरों तक नहीं आ सकती।

इमरजेंसी के बाद,जब हमने दो बड़े नाटक किये, "फिरंगी लौट आये" और "अब राजा की बारी है" हमने एक बड़ी व्यावहारिक समस्या का सामना किया। जो लोग हमें बुलवाते थे उनके सामने स्टेज,लाइट्स का खर्चा उठा पाने का सामर्थ्य नहीं था। न ही

... शेष पृष्ठ 38 पर

बाल कलम

स्कूलों की दशा और वहां की अव्यवस्थाओं के प्रति बच्चों ने पिपरिया से प्रकाशित अपने बाल अखबार "बाल-चिरैया" में अपनी चिन्ताएं दर्शाई हैं। प्रस्तुत हैं कुछ अंश -

ऐसा कैसा स्कूल

हमारे गांव में चार साल से स्कूल बन रहा है। लेकिन बन नहीं पाया है। और दो गुरूजी हैं और एक कुर्सी है। एक गुरूजी बैठते हैं और एक खड़े रहते हैं। और एक पेड़ के नीचे पढ़ाते हैं। इसलिए हम पढ़ नहीं सकते। और एक फट्टी है उस पर थोड़े से लड़के बनते हैं। और सब नीचे बैठते हैं तो हमारे हाथ-पैर, कपड़े गंदे हो जाते हैं। इसलिए हमारी पढ़ाई नहीं होती है।

- कैलाश प्रसाद राय
छटवीं, खामखेड़ी, मछेरा

पिटाई

मुझे नवल गुरूजी बहुत मारते हैं। एक दिन मैं लेट स्कूल गया तो उन्होंने मुझे खूब मारा। इसलिए मैं स्कूल नहीं जाता हूं।

- श्रवण दुबे,
चौथी, रायपुर

मुसीबत

हमारे स्कूल का नाम गांधी शाला है। हमरे स्कूल के बाजू में सिन्धी शाला लगती है। तीन मास्साब हैं। पहली, दूसरी और तीसरी और चौथी साथ लगत है। हमरे गुरूजी झाड़ू मारत हैं। पांचवी अलग लगत है। ठंडी के दिनों में रज्जन तीन-तीन बनियान पहन के जात मैं एकई बनियान पहन के जात हूं। मोहे ठंडी कम लगत है बरसात में पांचवी में पानी भर जात है तो पानी उलीच के बैठत हैं। बाजार से ड्रेस लानी थी ते छोटी पड़ गई तई वापिस कर डाली।

- रज्जन अहीर, देवेन्द्र नायक
तीसरी, गांधी शाला, पिपरिया

हमरे गांव का स्कूल

हमारे गांव में स्कूल था लेकिन पुराना था। उसमें सांप, गोहटा रहते थे। वर्षा के कारण स्कूल गिर गया। अब स्कूल एक पटैल के घर लगता है। मास्टर जी पटैल को किराया 50/- रूपए माहवार देते हैं। मास्टर जी ऐसे हैं कि सप्ताह में एक-दो बार गांव पढ़ाने जाते हैं। गांव जाकर लड़के बच्चों को स्कूल में बिठा कर खुद घूमने निकल जाते हैं और फिरी की तनखा खाते हैं। बच्चों को कुछ नहीं पढ़ाते। गांव में स्कूल जरूर होना चाहिए। क्योंकि गांव के बच्चे पढ़ नहीं पाते। स्कूल ही नहीं है तो बच्चे कहां पढ़ेंगे ? कृपया आप सब लोगों से निवेदन है कि गांव में एक स्कूल बनवाएं और मास्टर जी को बदल कर कोई दूसरा अच्छा मास्टर भिजवाएं जो बच्चों को अच्छी तरह पढ़ा सके। आजकल बच्चे पढ़े-लिखे होना आवश्यक है। गांव है महलवाड़ा बांसखेड़ा के इधर पर है। महलवाड़ा में स्कूल नहीं है यहां स्कूल बनवाने की कोशिश करें तो बेहतर होगा।

- कुलिया विश्वकर्मा
सातवीं, शा0उ0मा0क0शा0
पिपरिया

हमारी शाला में नल लगे

हमारे यहां नल लगे। उनमें से खूब पानी बहता है। और रास्ते में आने जाने वालों की आफत होती है। पहले नल नहीं लगे थे तो पानी नहीं बहता था। अब तो खूब पानी बहने लगा है। रास्ता खराब है। गाड़ी नहीं हीट पाती। सरपंच नाली नहीं बनाते हैं। हमारा रास्ता खराब है। वे रास्ते को भी नहीं सुधारते हैं।

- राजेश कुमार दुबे
छटवीं मा·शा· रायपुर

स्कूल की समस्या

हमारे गांव में स्कूल दस साल से टूटा है। उसकी दीवारें खण्डहर पड़ी हुई हैं। उस स्कूल में 300 बालक पढ़ते हैं। उनको बैठने की व्यवस्था नहीं है। आधे लड़के धूम में बैठे रहते हैं। उस स्कूल में तीन मास्टर हैं।

उस स्कूल में न तो बैठने के लिए टाट. फट्टी है और न ही जगह और पेशाब करने के लिए मूत्रालय भी नहीं है। और पानी की व्यवस्था भी नहीं है। और बरसात में पूरे स्कूल में पानी भर जाता है। इसलिए तो लड़कों को बैठने में परेशानी होती है। इसलिए शिक्षा अधिकारी स्कूल को बनवाने की दया करेंगे।

- पुरूषोत्तम सिंह पटैल
नवमीं, बनखेड़ी

बैठने की तंगी

हमारे स्कूल मछेरा कलाँ में आठ कक्षाएं लगती हैं। हमारे गांव में दो स्कूल हैं। एक स्कूल में पहली से पांचवी तक की कक्षाएं लगती हैं और दूसरे स्कूल में छटवीं से आठवीं तक की कक्षाएं लगती हैं। फिर भी हमारे स्कूल के लड़के-लड़कियां अच्छे से नहीं बैठ पाते हैं।

हमारे स्कूल में कम से कम चौदह-पन्द्रह गांवों के लड़के आते हैं। उन लड़के-लड़कियों को बैठने में परेशानी उठानी पड़ती है। कक्षा का कमरा बहुत छोटा है। कक्षा आठवीं के कमरे में भी लड़के-लड़कियों को बैठने में बहुत परेशानी हो रही थी।

हमारे गांव के सदस्यों ने एवं हमारे गुरूजी ने सोच-समझकर हमारे छात्रावास में आठवीं कक्षा को बैठाना शुरू किया। उससे अब हम लोगों को बहुत परेशानी हो रही है। आपसे विनम्र निवेदन है कि जल्दी से जल्दी दूसरा स्कूल बनवाने की कृपा करें।

-ओमप्रकाश मुकासा, मछेरा कलां

हालत मेरी पाठशाला की

मेरे स्कूल में पढ़ाई खूब होती है। हमारे शिक्षक अच्छी तरह से पढ़ाते हैं। हमारी प्रधान पाठिका कु0 अरूणा मिश्रा हैं। बड़े दुख की बात है, मेरी शाला टूट रही है। बरसात के दिनों में हम शाला में अच्छी तरह से बैठ नहीं सकते, शाला की छत खराब होने से हमारी पुस्तकें भींग जाती हैं। अधिकारियों ने आकर कई बार शाला को देखा परन्तु अभी तक शाला उसी हालत में है। यदि इस बरसात शाला नहीं सुधारी गई तो गिर जावेगी।

कृपया मेरी विनय पर ध्यान दिया जावे। मेरी शाला होशंगाबाद से 7 किलो मीटर दूर बाबई रोड पर है।

-बृजेश कुमार दुबे,
7 वीं, जासलपुर

....साक्षात्कार पृष्ठ 36 का शेष

हमारे पास साधन थे। तब सफदर ने यह कहा था कि हमें ऐसे नाटक करने चाहिए जिनमें खर्चा अधिक न हो। स्टेज वगैरह की जरूरत न हो और अधिक लम्बे न हों ताकि उनकी तैयारी में अधिक समय न लगे। ऐसे नाटक थे ही नहीं। बहुत तलाश की ऐसे नाटकों की। अंत में उसने सफदर ने फैसला किया कि खुद लिखेंगे। मशीन नाटक लिखा, उससे जो हमें सफलता मिली। उससे लगा कि हमें नुक्कड़ नाटक करने चाहिए। नुक्कड़ नाटक की व्यापकता और उसकी ताकत सफदर को बहुत पहले नजर आने लग गई थी पहली रिर्हसल से ही उसकी पढ़ाई, उसका साहित्य की ओर रूझान और उसमें बहुत सर्जनात्मक ताकत थी, शायद इसलिए, मगर हमने यह भी फैसला किया था कि हम साल में दो बार मंच नाटक भी करेंगे। इसीलिए हमने "मोटे राम का सत्याग्रह" नाटक किया था। हम यह मानते हैं कि दोनों तरह के नाटकों की अपनी जगह है।

-•-

- रबर सवालीराम के .... पृष्ठ 33 से

हमें बहुत खुशी हुई जो आपने हमारे सवालों का हल निकाल दिया। कृपया हमारे पत्रों के सवालों का आप उत्तर बताते रहना जी। आपके कारण हमें पढ़ाई में मदद मिलती है। और आप मुझे यह बताए कि मैं गणित में बहुत कमजोर हूं और मेरे दिमाग मेरे गणित बिलकुल भी नहीं आता क्या करूं सो आप कुछ ऐसे उपाय बताएं जिससे मैं गणित में अच्छे नम्बर पाऊं, आपकी बड़ी मेहरबानी होगी, आप कुछ ऐसे उपाय बताएं जिससे मेरा पढ़ाई में भी मन लगे।

- डालचंद राठौर,
कीर मोहल्ला, शाहपुर

हम मिशन स्कूल हाटपीपल्या जिला देवास म0प्र0 कक्षा-6 ए हाटपीपल्या से लिखते हैं कि हम आपसे एक बात कहना चाहते हैं। इसी स्कूल के छात्र बबन ने कहा है कि हम बच्चे मिलकर बाल विज्ञान को बंद करने का। हमसे बोला, लेकिन हमने उसकी बात नहीं मानी और मैंनें अपने मन में कहा की जरा सा पिल्ला तो है और बाल विज्ञान को बंद करवा लेगा हमको तो बाल विज्ञान बहुत अच्छी लगी हमारे पिरेट इस विषय का जैन सर का है वो हमको प्रयोग कराते-कराते अभी तक पाठ 17 "हमारी फसलें" तक करवा दिया है। हमारे सर बहुत अच्छे हैं ये पत्र का जवाब जल्दी देना।

-धर्मेन्द्र कुमार शर्मा,
कक्षा-6वीं, मिशन स्कूल,
हाटपीपल्या, जिला देवास म0प्र0

आपको हमारे एवं हमारी कक्षा-8 वीं के छात्रों का सादर प्रणाम।
हम यहां प्रयोग में संलग्न हैं आशा है कि आप भी अपनी खोजों में संलग्न होंगे।

आगे समाचार विदित होवे कि आपने नई विज्ञान चलाकर हम पर उपकार किया है परन्तु उस पुस्तक के प्रयोगों के लिए पूर्ण सामान नहीं भेजे। हमको आपकी बाल वैज्ञानिक बिलकुल खराब लगी। यहां पर हमको कोई बराबर नहीं पढ़ाता/समझाता नहीं है। हमको परिभ्रमण पर भी नहीं ले जाते हैं। कष्ट कर के हमारी जीव विज्ञान एवं भौतिक रसायन ही चलाएं और यह बंद कर दें। मैं यहां पर कुशल हूं। लेकिन मुझे लिखते हुए शर्म आ रही है कि हमारे किट में गैसे-2 प्रयोग के लिए जेट नली, गंध का अम्ल और जस्ते के टुकड़े नहीं दिए गए हैं। इससे हम हाइड्रोजन गैस नहीं बना पाएंगे। इससे हमें परीक्षा में कठिनाई होगी। बाकी विज्ञान की पढ़ाई अच्छी चल रही है। हमारी छः माही परीक्षा होने वाली है।

- उ0मा0क0शाला की छा
हरसूद

- अध्याय 4 का 8 वां प्रश्न नहीं आ रहा है। पूरी कक्षा इससे परेशान है। क्योंकि ये प्रश्न आ तो रहा है मगर क्या करें कि हमारे विज्ञान कक्ष में चुंबकीय सुई नहीं है इसलिए आप चुंबकीय सुई भिजवा दीजिए। नहीं तो विज्ञान हम विद्यार्थी कैसे करें। हमारी विज्ञान दो दिन से बंद है इसलिए आप जल्दी से जल्दी चुंबकीय सुई भिजवाने की कृपा करें जी। आप खुद समझदार हैं।

- आनंद कुमार दुबे,
कक्षा-6वीं, चांदौन

- और एक बिना नाम की चिट्ठी :

चीं-चीं रानी चीं चीं-रानी
तेरी-मेरी अजब कहानी
तू भी छोटी, मैं भीं छोटी
तू भोली तो मैं भी भोली
एक-एक चौंच में कितने दाने
मटक-मटक कर पीती पानी
चीं-चीं रानी चीं-चीं रानी

आग

- रमेश उपाध्याय

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी आग बुझाने के महकमे में काम करता था। वह कोई बड़ा अधिकारी नहीं, दमकल-केन्द्र का एक छोटा-सा कर्मचारी था, लेकिन अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझता था। दिन का वक्त हो चाहे रात का, वह अपनी ड्यूटी पर हमेशा मुस्तैद रहता। ज्योंही दमकल-केन्द्र को कहीं से आग लगने की सूचना मिलती, अधिकारी अक्सर उसी को बुलाकर आदेश देते और वह अन्य कर्मचारियों के साथ दमकल-गाड़ी पर सवार होकर आग बुझाने चल पड़ता। अपनी जान जोखिम में डालकर वह आग में घिरे हुए लोगों को बाहर निकालता और जल्दी से जल्दी आग बुझाकर संपत्ति को नष्ट करने से बचाता। कई बार वह दूसरों को बचाने की कोशिश में खुद मरते-मरते बचा था और अपनी साहसपूर्ण कर्तव्यपरायणता के लिए देश की सरकार से इनाम-इकराम भी पा चुका था।

वह एक नौजवान और खुशमिजाज इंसान था। वेतन उसे ज्यादा नहीं मिलता था, लेकिन वह हमेशा संतुष्ट और खुश नजर आता था। परिवार में उसकी पत्नी और उसके बच्चे उससे बहुत प्यार करते थे। दमकल-केन्द्र में उसके साथी कर्मचारी भी उससे खूब प्यार करते थे। शायद इसीलिए रोज आग की लपटों में घुसकर अपनी जान जोखिम में डालने के बावजूद वह स्वयं को बहुत सुखी महसूस करता था।

लेकिन इधर कुछ दिनों से वह थोड़ा उदास, परेशान और विक्षुब्ध रहने लगा था। हालांकि उसने अपनी किसी जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ा था, फिर भी

ऐसा लगता था कि वह कुछ विरक्त-सा होता जा रहा है। बात यह थी कि उन दिनों शहर में रोज ही कहीं न कहीं आग लग जाती थी, और वह किसी की असावधानी से अनजाने में नहीं लगती थी, बल्कि कुछ लोगों के द्वारा जानबूझकर लगायी जाती थी। अनजाने लग जानेवाली और जानबूझकर लगायी जानेवाली आग का फर्क उस आदमी को मालूम था। अनजाने में अचानक लग जानेवाली आग को देखते ही सब लोग मिलजुलकर उसे बुझाने की कोशिश करने लगते हैं और छोटी-मोटी आग खुद ही बुझा लेते हैं। बेकाबू होती दिखायी देती है तो फौरन दमकलवालों को बुला लेते हैं। लेकिन जानबूझकर लगायी जानेवाली आग कुछ और ही होती है।

उस आदमी को पिछले दिनों इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था। उन दिनों शहर में रहनेवाले दो धार्मिक संप्रदायों के लोग कभी भी, किसी भी बात पर, या बिना बात भी आपस में लड़ने लगते थे। अजीब धार्मिक लोग थे वे। धर्मग्रंथों की जगह उनके हाथों में हथियार होते। मुंह से वे अपने-अपने उस ईश्वर की जय बोलते, जो सबका पिता और पालनहार था, लेकिन हथियारों से वे सामने आनेवाले

सब लोगों को मारते चलते। औरतों, बच्चों, बुजुर्गों और बीमारों को भी। उन्हें इतने से ही संतोष न होता। वे शहर की बस्तियों, दुकानों, दफ्तरों और कल-कारखानों में आग लगा देते और जिन्दा लोगों को उस आग में झोंक कर भून डालते। वे अपनी लगायी हुई आग को हवा दे-देकर फैलाते और आग बुझानेवालों को अपना दुश्मन मानकर मौत के घाट उतार देते। दमकलवालों से तो उन्हें खास दुश्मनी थी। वे आग लगाकर दमकल-केन्द्र के अधिकारियों को टेलीफोन करके धमकाते कि आग बुझाने के लिए किसी को भेजा तो परिणाम अच्छे न होंगे। फिर भी यदि दमकल-गाडियां आग बुझाने जाती तो वे उनका रास्ता रोक देते और उन पर गोलियां चलाते।

वह आदमी खुद भी ऐसे हादसों से गुजर चुका था। एक बार आग बुझाते समय कहीं से गोली आकर उसके कंधे में लगी थी और वह कई दिनों तक अस्पताल में पड़ा रहा था। जिन्दा तो बच गया था, लेकिन उसके अंदर भरा रहनेवाला उत्साह धीरे-धीरे मरने लगा था। यही चीज वह अपने साथ काम करनेवाले दूसरे लोगों में भी देख रहा था। जोश और जिंदादिली की जगह अब उनके चेहरों पर भय की मुर्दनी-सी छायी रहती। लोगों की जान बचाने के लिए आग में कूद पड़ना एक बात है, आग बुझाने की कोशिश में आग लगानेवालों के हाथों मारे जाना एकदम दूसरी बात।

एक रात वह आदमी दमकल-केन्द्र में अपनी ड्यूटी पर तैनात था। उसके अधिकारी उससे यह कहकर अपने-अपने घर सोने चले गए थे कि कोई हादसा हो तो वह उन्हें टेलीफोन कर दे। उसके साथी कर्मचारी भी दमकल-केन्द्र में इधर-उधर लेटे-बैठे ऊंघ रहे थे। लेकिन वह मुस्तैदी से जागता हुआ टहल रहा था और सोच रहा था, आग लगानेवाले आखिर चाहते क्या हैं? और सरकार उनके आगे इतनी विवश क्यों है कि कुछ भी नहीं कर पा रही है तो शहर की जनता को आग लगानेवालों के खिलाफ एकजुट क्यों नहीं करती? क्या वह खुद ही लोगों को आपस में लड़ाना चाहती है? या यह किसी देश की साजिश है?...

अचानक टेलीफोन की घंटी बजी।

उस आदमी ने दौड़कर फोन उठाया। दूसरी ओर से कोई बेहद घबरायी हुई आवाज में बोल रहा था, "सुनिए, यहां लड़ाई हो गयी है...वे लोग हमारे घरों को आग लगा रहे हैं...कई मकान जल रहे हैं...वे बुझाने भी नहीं देते...आप लोग फौरन आइए, नहीं तो सारी बस्ती..."

"आप कहां से बोल रहे हैं?" उस आदमी ने पूछा।

मैं सार्वजनिक टेलीफोन से..."उधरवाला आदमी बता ही रहा था कि अचानक एक धमाका सुनायी दिया और उसकी प्राणांतक चीख, "आह, मारा डाला..."

उधर से आवाज़ आनी बंद हो गयी।

उस आदमी ने दमकल-केन्द्र की खतरे की घंटी बजाकर अपने सब साथियों को जगा दिया और उन्हें दमकल-गाड़ियों पर सवार होने के लिए कहकर पुलिस विभाग को फोन मिलाने लगा। काफी देर बाद उधर से फोन उठाया गया और एक उनींदी-सी आवाज़ आयी, "फरमाइए, रात के दो बजे पुलिस आपकी क्या सेवा कर सकती है?"

"सुनिए, मैं दमकल केन्द्र से बोल रहा हूं···अभी-अभी एक टेलीफोन आया था कि शहर में कहीं कोई लड़ाई हो गयी है···क्या बता सकते हैं कि यह कहां···?"

उधर से मजाहिया लहजे में कहा गया, "अजी हुजूर, लड़ाई कहां नहीं हो रही है? दुनिया के हर हिस्से में लड़ाई छिड़ी है। मैं खुद बीबी से लड़कर आया हूं···"

"देखिए, यह मजाक का वक्त नहीं है···मैं दमकल-केन्द्र से बोल रहा हूं···मुझे सूचना मिली है कि शहर में कहीं आगजनी हो रही है आप···"

"आग तो मेरे दिल में भी लगी हुई है, एक दमकल गाड़ी इधर भी भेजो न यार···।"

"देखिए, आप होश में आइए, यह मजाक का वक्त नहीं है।" उस आदमी ने दूसरे सिरे पर मजाक करनेवाले आदमी को डांटकर कहा,"मुझे यह बताइए कि शहर में आग कहां लगी हुई है और हम लोगों को कितनी दमकल गाड़ियां लेकर वहां पहुंचना है? यह आपका काम है, आपको खुद ही हमें सूचित करना चाहिए था।

"ठहरो, देखते हैं।" दूसरे सिरे से भन्नायी हुई आवाज़ आयी। फोन शायद किसी और को दिया गया। किसी और ने भारी आवाज़ में उस आदमी का नाम-धाम पूछा और उस जगह के बारे में बता दिया, जहां लड़ाई और आगजनी हो रही थी।

"हम लोगों के लिए क्या आदेश है?"

"हम क्या कह सकते हैं जब हमें ही ऊपर से कोई आदेश नहीं मिला है।"

पुलिस की काहिली से खीजकर उस आदमी ने बात बंद कर दी और दमकल-केन्द्र के सबसे बड़े अधिकारी को फोन मिलाने लगा। उसके साथी दमकल-गाड़ियों पर सवार हो चुके थे, पर नियमानुसार रवाना होने से पहले दमकल-केन्द्र के किसी अधिकारी से आदेश प्राप्त करना जरूरी था। नींद में खलल पड़ने से झुंझलाये हुए अधिकारी की आवाज़ सुनकर उस आदमी ने कहा, "साहब, हम लोगों को सूचना मिली है कि शहर में गरीबों की एक बस्ती में आगजनी···"

"सूचना किसने दी?" अधिकारी ने पूरी बात सुने बिना ही पूछा?

"वहीं का कोई आदमी था साहब, नाम-पता मालूम नहीं हो सका,लेकिन···"

"इतने सालों से तुम दमकल में काम कर रहे हो, तुमको यह नहीं मालूम कि सूचना देनेवाले का नाम-पता नोट करना कानूनन जरूरी होता है?"

"मालूम है साहब, लेकिन वह आदमी कुछ बता ही नहीं पाया? शायद उसे फोन करते समय ही मार डाला गया। लेकिन साहब, मैंने पुलिस से पूछकर पता लगा लिया है, आगजनी वाकई हो रही है।"

"पुलिस ने हमसे मदद मांगी है?"

"जी···?"

"बेवकूफ। क्या पुलिस ने हमसे कहा है कि हम वहां आग बुझाने जायें?"

"जी नहीं, मगर···"

"तो हम वहां कैसे जा सकते हैं? न नीचे से कोई सूचना है न ऊपर से कोई आदेश।"

"लेकिन साहब, उस मरते हुए आदमी ने···"

"बकवास बंद करो और मुझे सोने दो। ऊपर से कोई आदेश आये या नाम-पतेवाला कोई जिन्दा आदमी सूचना दे, तब मुझे टेलीफोन करना।" अधिकारी ने बात बंद कर दी।

उस आदमी को बहुत बुरा लगा। वह कहना चाहता था,"आप तो अधिकारी हैं, स्वयं जाकर पता लगा सकते हैं और निजी सूचना के आधार पर हम लोगों को आग बुझाने भेज सकते हैं। किसी बड़े आदमी का घर जल रहा होता तो आप अभी सिर के बल दौड़े हुए आते, गरीबों की बस्ती जल रही है, इसलिए कानून छांट रहे हैं।

आदेश न मिलने के कारण उस आदमी के साथी दमकल-गाड़ियों से उतर आये और मज़ाक करने लगे, "अरे भाई, खामखां साहब की नींद खराब की। बड़े अफसर हैं, बड़े लोगों की सेवा करते हैं। गरीबों की बस्ती जल रही है,कोई स्काईस्केपर तो नहीं।"

"बीमा कंपनी को चूना लगाने के लिए कोई दुकान या फैक्ट्री जलायी जा रही होती तब भी कोई बात थी। सब कुछ खाक हो जाने का सर्टिफिकेट देकर बेचारे कुछ कमा लेते।"

"परसों देखा था, उस तेल-मिल में आग लग जाने की खबर साहब खुद जाकर लाये थे।"

साथी कर्मचारी हंस रहे थे, लेकिन वह आदमी बेहद परेशान था। वह दौड़कर दमकल-केन्द्र की छत पर गया। अंधेरी रात का काला आसमान एक तरफ से लाल हो रहा था और आग की ऊंची-ऊंची लपटें उठती दिखायी दे रही थीं। नीचे आकर उसने बड़ी घबराहट के साथ कहा, "भाइयो, वह बस्ती हम लोगों की कालोनी के बिलकुल करीब है। अगर आग बुझायी नहीं गयी तो हमारे क्वार्टरों में भी पहुंच सकती है। घरों और बाल-बच्चों को बचाना है तो कुछ करो।"

चिंतित और परेशान दूसरे भी थे, पर समझ नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये। बोले,"ऊपर से आदेश पाये बिना हम वहां कैसे जा सकते हैं?"

तो आदेश की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें?"

"मजबूरी है। सरकार ने नियम ही ऐसे बना रखे हैं।"

सो लो, आग फैल रही है, हमारे घर बचेंगे नहीं।"

पर हम कर ही क्या सकते हैं?"

"चलो, आग बुझाने चलते हैं। जितनी भी गाड़ियां हैं, सब ले चलो।"

नहीं, यह गैरकानूनी होगा। सबकी नौकरी जाएंगी।"

उस आदमी को गुस्सा आ गया। चिल्लाकर बोला, हम कानून की बात कर रहे हैं, लेकिन कानून रह कहां गया है? क्या घरों में आग लगाना कानूनी है? पूरी-पूरी बस्तियां जलाकर राख कर देना कानूनी है? लोगों को आग में जिन्दा भून देना कानूनी है? आग बुझानेवालों को मार डालना कानूनी है? शहर में आग लगी होने पर भी दमकल-केन्द्र को सक्रिय न करना कानूनी है?"

कोई कुछ नहीं बोला, सबके दिलों में दहशत समायी हुई थी।

वह आदमी फिर टेलीफोन के पास गया। वह बड़े अधिकारी को सूचित करना चाहता था कि आग दमकल-कालोनी की तरफ बढ़ रही है। अपने साथियों की पस्त-हिम्मती ने उसमें एक दीनता-सी भर दी थी। वह अधिकारी के आगे गिड़गिड़ाने तक को तैयार था। कहना चाहता था,"रहम कीजिए साहब, हमारे बाल-बच्चों की जिन्दगी का सवाल है, हम लोगों को आग बुझाने के लिए, जाने दीजिए।" लेकिन टेलीफोन को कान से लगाने पर उसने पाया, उसमें कोई आवाज नहीं है। इस बीच टेलीफोन जाने कब मुर्दा हो गया था।

रिसीवर पटक कर वह आदमी वहीं बैठ गया। उसके साथी भी टेलीफोन के इर्द-गिर्द घेरा बनाकर बैठ गए। सब एक-टक टेलीफोन को ही देख रहे थे उन्हें उम्मीद थी कि अभी घंटी बज उठेगी। शायद फिर कोई आदमी आग लगने की सूचना देगा। या ऊपर से आदेश आ जायेगा।
लेकिन टेलीफोन खामोश पड़ा रहा मुर्दा।

सुबह के छह बजे उनकी ड्यूटी बदलनी थी। जब तक सुबह की ड्यूटीवाले दूसरे कर्मचारी न आ जायें, नियमानुसार किसी अधिकारी की आज्ञा के बिना के दमकल-केन्द्र से हिल भी नहीं सकते थे। और अभी सिर्फ तीन बजे थे। पूरे तीन घंटे बाद उन्हें छुट्टी मिलनी थी, और उन्हें एक-एक मिनट गुजारना भारी पड़ रहा था।

तभी उन्होंने देखा, सुबह की ड्यूटी वाले कर्मचारी दौड़े चले आ रहे हैं। हांफते हुए बदहवास। बेहद आतंकित। उन्हें आते देख सब खड़े हो गए। उस आदमी ने आगे बढ़कर पूछा, "आग हमारे घरों तक पहुंच गई क्या।"

"हां।" उन लोगों ने मानो एक स्वर में कहा, "और तुम लोग यहां हाथ पर हाथ रखे बैठे हो? क्या तुम्हारा कोई फर्ज नहीं है?"

"पर तुम लोग अपने जलते हुए घरों को छोड़कर यहां क्यों आये? टेलीफोन कर देते।"

"बहुत कोशिश की···कोई टेलीफोन काम नहीं कर रहा है।···न यहां का,न पुलिस का···वहां वे लोग सब घरों को आग लगा रहे हैं···लूट रहे हैं···जो उन्हें रोकता है,उसे मार रहे हैं···हम लोग अंधेरे में छिपते-छिपाते किसी तरह अपनी जान बचाकर आ पाये हैं···ऐसी आग तो कभी नहीं देखी···आग लगानेवाले निर्भय हैं, उन्हें किसी की परवाह नहीं···अपनी भी···"

उस आदमी ने उन लोगों की बातें सुनकर रात की ड्यूटी वाले अपने साथी कर्मचारियों की ओर देखा और जोर से बोला, "सुन लिया भाइयो? क्या अब भी कानून का पालन करते बैठे रहोगे? यह आग वे लोग निर्भय होकर लगा रहे हैं, हमें यह आग निर्भय होकर बुझानी होगी। वे लोगों की जान लेने के लिए अपनी जान जोखिम में डाल रहे हैं, हमें लोगों की जान बचाने के लिए अपनी जान जोखिम में डालनी होगी और हमारे लिए यह कोई नयी बात नहीं होगी हम हमेशा इसी तरह आग बुझाते आये हैं। उन्हें हमारे घरों में आग लगाते वक्त किसी कानून की चिंता नहीं हुई, कानून बनानेवालों और लागू करनेवालों को हमारे घरों को बचाने की चिंता नहीं रही, और हम हैं कि कानून से अपने हाथ बांधे हुए बैठे हैं। चलो, दमकल-गाड़ियों पर सवार हो जाओ। अब हम किसी के आदेश की प्रतीक्षा नहीं करेंगे।"
थोड़ी देर बाद टन-टन घंटियां बजाती हुई दमकल-गाड़ियां आग बुझाने जा रही थीं।

— × —

†9 सितंबर 1950 को पंजाब के एक गांव में जन्मे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से संबंध। एंटी-47 से जुड़कर अमरीका में प्रवास। खालिस्तान के जबरदस्त विरोधी। 23 मार्च, 88 को अपने मित्र के साथ अपने ही गांव में आतंकवादी हिंसा के शिकार।

कविता संग्रह ■ लौहकथा
■ उड्डदे बाजां मगर
■ साडे सपनियां विच
■ लड़ांगे साथी

हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे साथी उदास मौसम के खिलाफ
गुलाम इच्छाओं के खिलाफ हम लड़ेंगे साथी
हम चुनेंगे साथी जिन्दगी के टुकड़े
हथौड़ा अब भी चलता है उदास निहाई पर
हल की लीक अब भी बनती है चीरती हुई धरती पर,
फिर भी कुछ नहीं होता,
सवाल नाचता रहता है,
सवाल के कंधों पर सवार होकर हम लड़ेंगे साथी।
कत्ल हो चुकी भावनाओं की कसम खाकर
बुझी हुई नजरों की कसम खाकर
हथेलियों के ढट्ठों की कसम खाकर हम लड़ेंगे साथी।
हम लड़ेंगे तब तक
जब तक बीरू बकरिहा
बकरियों का मूत पीता है
फूली खड़ी सरसों को
जब तक हलवाहे खुद नहीं सूंघते
सूनी आंखों वाली गांव की अध्यापिका का पति
जब तक जंग से वापिस नहीं आता
जब तक पुलिस के सिपाही
अपने ही भाइयों का गला घोंटने को मजबूर हैं
कि दफ्तरों के बाबू जब तक लिखते अपने ही लहू से शब्द
हम लड़ेंगे जब तक दुनिया में लड़ने की जरूरत बाकी है।
बंदूक न हुई तो तलवार होगी,
तलवार भी न हुई तो लड़ने की लगन होगी,
लड़ने का ढंग न हुआ तो लड़ने की जरूरत होगी,
और हम लड़ेंगे साथी,
हम लड़ेंगे कि लड़े बगैर कुछ भी नहीं मिलता,
हम लड़ेंगे कि अब तक लड़े क्यों नहीं,
हम लड़ेंगे अपनी सज़ा कुबूल करने की,
जो लड़ते हुए मर गये
उनकी याद जिंदा रखने को
हम लड़ेंगे साथी।

–अवतार सिंह पाश

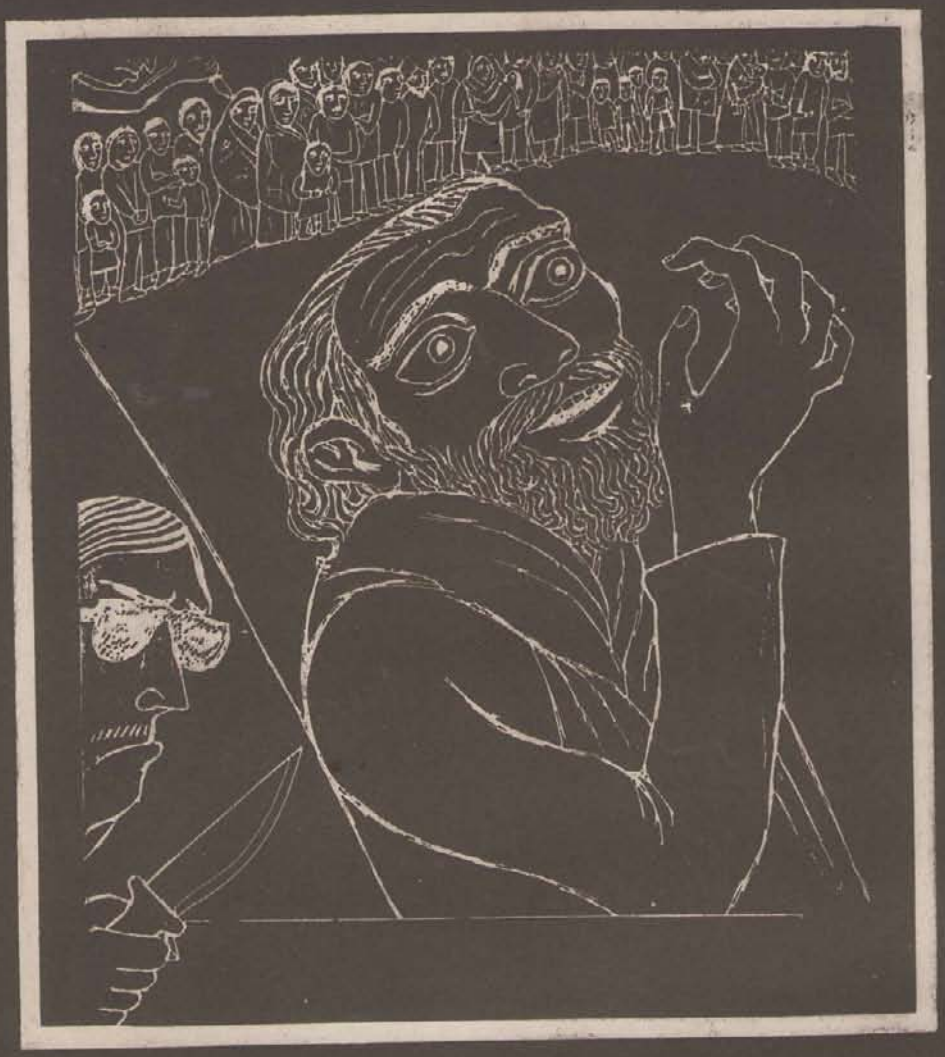

डाक पंजीयन क्रमांक जे-2/म0प्र0/33/22 दिनांक-5/12/86 होशंगाबाद
एकलव्य, ई.7/208, अरेरा कालोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं अनुपम
आफसेट प्रिंटर्स द्वारा मुद्रित

संपादन एंव वितरण: एकलव्य, कोठी बाजार, होशंगाबाद 461 001